अद्भुत विचार।

लेखक— रामवगस दमार्गी।

श्रीवंनीगोपालाभ्यां नमः ।

अद्भुत विचार ।

अर्थात्

सांगीनाटक
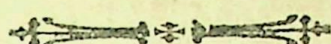
बीकानेर निवासी

माहेश्वरी दमाणी रामबगस कृत ।
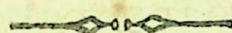
श्रीधाम वृन्दावन ।

श्रीमदनगोपाल मुद्रालयमें

श्रीविश्वम्भरनाथ शर्म्मा द्वारा

मुद्रित
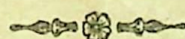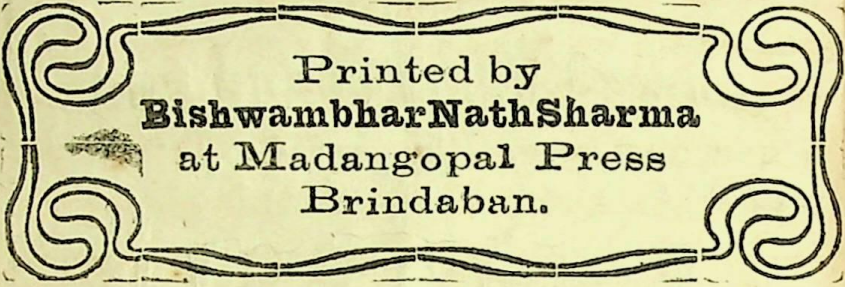
संम्वत १९७१

प्रथम बार २०००] [मूल्य आठ आने ।

Printed by
BishwambharNathSharma
at Madangopal Press
Brindaban.

ओ३म्

भूमिका।

यह पुस्तक जिसको कि मैं आप सज्जन पाठकगणों के कर-कमलों में सादर अर्पित करने को उद्यत हुआ हूँ। जिसका नाम "अद्भुत-विचार" है। जो इसको आद्योपान्त पढ़लेने अथवा, मतलब समझ लेने के पश्चात् इसके नामकी सत्यता आपको विदित हो जायगी। यह पुस्तक केवल मनोरंजक होनेके लिए ही इस ढंग से लिखी गई है। परन्तु वास्तवमें यह पुस्तक न तो कोई उपन्यास है और न कोई इतिहास ही है। किन्तु यह सचमुच अपने ढंग से एक निराली ही पुस्तक है इसमें बहुतसी अद्भुत वारतायें हैं। बड़े विचार पूर्वक शास्त्रोंका आश्रय लेकर संगृहीत किया गया है और युक्ति द्वारा ठीक घटता भी है। इस लिए इसका नाम "अद्भुत" विचार रक्खा है। और मुझे पूरा विश्वास है कि आप सज्जनगणोंने आजतक इस ढंगकी कोई पुस्तक न देखी होगी। इस वास्ते इसे लीजिए और अवश्य पढ़िए; फिर समझ कर आनन्द लाभ उठाइये जिससे कि मेरा परिश्रम भी सफल हो।

इस पुस्तक के बनाने की इच्छा मेरे हृदय में बहुत समय से उपस्थित थी। परन्तु कोई उचित समय न मिला इस लिए शुभ अवसर आनेकी प्रतिक्षा करता रहा। जब हमारे अन्नदाताजी श्रीबीका-नेर नरेश साहब बहादुरने श्रीजयंती (जुबिली) महोत्सवका आरंभ किया, बस उसी शुभ समयको पाकर मैंने भी इस पुस्तकको लिखना आरंभ कर दिया। क्यों कि मैं भी श्रीजीसाहिबोंकी प्रजामें हूँ। मैंने

भी इस शुभ समय पर अपने विचारका प्रकट करना उचित समझा अतएव इस पुस्तकको तैयार करके सज्जनोंकी भेट करनेका दृढ़ संकल्प कर लिया है । मैंने जोशमें आकर ऐसा संकल्प तो कर लिया, परन्तु इतनी योग्यताके लायक तो मैं हूँ ही नहीं । क्योंकि व्याकरणादि से तो सर्वथा अनभिज्ञ हूँ केवल देवनागरी भाषा की पुस्तकें देख सकता हूँ। और इस पुस्तकके बनाने में मेरा कोई सहायक भी नहीं है ; इस लिये सर्व सज्जनों से सविनय प्रार्थना करता हूँ कि यदि व्याकरण सम्बन्धी या अन्य कोई अशुद्धता हो तो कृपया क्षमा कीजिए और इसकी भाषा पर अधिक ध्यान न देकर इसमें जो विचार भरा है उसे पढ़िये और अपनी सभ्यता से इसका आशय समझ लीजिए ।

इस पुस्तक का विषय क्या है सो भूमिका में प्रकट करना चाहिये था, परन्तु किसी महाशयने मुझसे कहा कि जैसे वेदान्तआदि शास्त्रों के आद्यमें अनुबंध चतुष्टय हुआ करते हैं तैसे ही इस ग्रन्थ में भी अनुबन्ध होना चाहिये । क्योंकि अनुबन्धके जाने बिना विचवानोंकी ग्रन्थमें प्रवृत्ति नहीं होती । इस वास्ते इस पुस्तकका विषय ईश्वर स्तुति के पश्चात् अनुबन्ध के वरणन में बतलाया जायगा ।
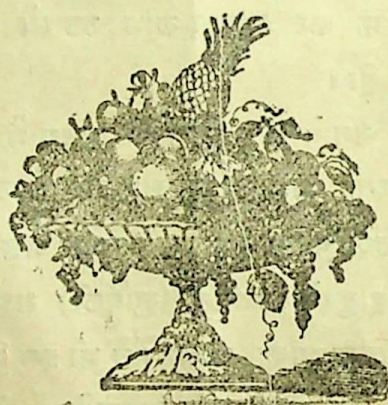
श्रीगणेशायनमः ।

ईश्वर स्तुति ।

दोहा ।

विघ्न हरण मंगल करण, गौरी सुत गण राज ।
ऋद्धि सिद्धि दे भक्तको, सिद्ध करो सब काज ॥

सर्व शक्तिमान परमेश्वरको नमस्कार करता हूँ। कैसे हैं यह परमेश्वर कि जिसने अपनी अपार अर्थात् नहीं है जिसका पार ऐसी मायारूपी शक्ति से सारी सृष्टिको बनाई है और सारी सृष्टिकी उत्पत्ति वा स्थिति वा प्रलयका स्थान भी यही परमात्मा है। अर्थात् सारी सृष्टि इन्हीं माया वशिष्ठ परमात्मा के अन्दर से निकलती है। और इन्हींके आश्रय स्थित रहती है। जब महा प्रलय होती है तो इन्हीं परमेश्वरमें सर्व नाम रूप जगत्लय हो जाया करता है। अर्थात् क्रमयानुसार इस जगतकी उत्पत्ति स्थिति वा लय बारंबार होती रहती है।

यह जगदीश सारे जगत्में व्यापक होने पर भी योगियोंके हृदय देशमें बसने वाला कहा जाता है। क्योंकि परमात्माकी उपलब्धी हृदय देशमें ही योगियोंको होती है। और योगके बिना इतर प्राकृत मनुष्योंको परमात्मा की प्राप्ती नहीं होती। ऐसा ही श्रीमद्भगवद्गीता के न्यास, ध्यान से पाया जाता है। सो यह है—

यं ब्रह्मा बरुणेन्द्ररुद्रमरुतः स्तुन्वन्ति दिव्यैः स्तवैर्वेदैः सांगपदक्रमोपनिषदैर्गायंतियं सामगाः ध्यानावस्थित

तद्गतेन मनसा पश्यंति यं योगिनो यस्यांतं न विदुः सुरासुरगणा देवाय तस्मैनमः।

प्रिय सज्जनों! मैं अपना लेख निर्विघ्न समाप्त होनेके लिये परमेश्वर को नमस्कार करता हुआ मंगला चरण समाप्त करता हूँ। और सारे श्रेष्ठ पुरुष भी ग्रन्थके आदिमें ऐसा ही करते आए हैं। इस वास्ते इसे श्रेष्ट आचरण भी कहते हैं।

सुहृद् महाशयों! यह ईश्वरी महा माया कि जिससे सारी सृष्टि रची गई है सो कैसी अपार है। चाहे जिधर बिचार करके देखिए किन्तु इसकी हद नहीं आ सक्ती। जैसे, बोली, चाली, सूरत, भाग आदि जो २ देखने में आता है सो सब नया ही नया प्रतीत होता है। अर्थात् एक दूसरे से मिल ही नहीं सक्ता किन्तु अनन्त है।

जैसे यह अनन्त है तैसे ही बिद्या, इल्म, वा बिचार भी अनन्त है; जो कोई पुरुष तन मन से उक्त वातों पर प्रयत्न करते हैं या करैंगे तो उनको कुछ न कुछ अवश्य मिले ही गा।

देखो हमारे पूज्य पूर्वज महर्षियोंने सुस्थ चित्त होकर विचार किया तो उनको अनेक विद्यायोंका भंडार मिला जिस से अनेक शास्त्र रचे जो आज तक इस भूपंडल वासी बड़े मान्य के साथ पढ़ २ के अनेक विद्याओंका प्रादुर्भाव कर रहे हैं। जो कि आज कल यूरोप के वासियोंने उन्ही ग्रन्थोंके अवलोकनसे बुद्धि की गौरवता पाकर रेल तार-विद्युद्विद्या और अनेकानेक शिल्पविद्या संबन्धी यन्त्रादि रचना कर रहे हैं। और जो २ महाशय इस विद्या में विचार करते रहेंगे उन २ को अवश्य नूतन विद्याकी प्राप्ती होवेगी। क्योंकि यह ईश्वरी माया अनन्त है इसका कभी थाह नहीं आ सकता। इस लिए मनुष्यको पुरुषार्थ हीन कभी न होना चाहिये और यह भी न समझना चाहिए कि जो कुछ इस समयमें विद्या प्रकट है या जो पदार्थ प्राप्त हो चुके हैं

उससे अधिक अब नहीं है। किन्तु मनुष्यको सदैव ऐसा समझना चाहिए कि इस जगत् में अनन्त पदार्थ गुप्त रीति से विद्य मान हैं। जैसे जैसे मनुष्य विद्या और पुरुषार्थ करैगा वैसाही वैसा फल पाता जायगा। इसी बात पर नीति वालों का यह सिद्धान्त ठीक घटता है। जैसे बिदुरजी ने कहा है—

सुवर्ण पुष्पां पृथिवीं चिन्वन्ति पुरुषास्त्रयः
शूरश्च कृतविद्यश्च यश्च जानाति सेवितुम् ॥१॥

अर्थः—इसका तात्पर्य यह है कि यह पृथ्वी सुवर्ण से पुष्पित है परन्तु इन पुष्पोंको तीन ही पुरुष पा सकते हैं। एक तो शूरवीर दूसरा विद्वान् तीसरा जो इस को सेवन करना जानता है। इससे भी यही प्रतीत होता है कि अनेक प्रकार के पदार्थ इस भूमि में गुप्त है; जहाँ तक निकल सकते हों निकाल लेना चाहिए। इस से मनुष्यको दो लाभ होते हैं एक तो आप सुखका भागी बनता है और दूसरे चिरकाल पर्यन्त मरने के बाद भी बिख्यात रहता है।

अथ अनुबंध चतुष्टय बरणन :—

अधिकारी अर्थात् इस पुस्तकके श्रवण का अधिकारी कौन है; बिषय, अर्थात् यह पुस्तक कौनसी वार्ताको वर्णन करती है। संबंध, अर्थात् इस पुस्तकका किस २ के साथ क्या २ संबंध है। प्रयोजन, अर्थात् इस पुस्तक का प्रयोजन क्या है। इन चारोंके संगठित होनेको अनुबन्ध कहते हैं।

अथ अधिकारी बरणन :—

जिस पुरुषको इस पुस्तकके श्रवण द्वारा पूर्णानन्द की प्राप्ती होवैगी वही पुरुष इस पुस्तकका अधिकारी होगा। जैसे कि मल विक्षेप रहित बिवेकादि चार साधनों करके सम्पन्न मुमुक्षु जनोंके

ही वेदान्त शास्त्र के श्रवण से पूर्णानन्द की प्राप्ती होती है अन्यको नहीं। तैसे ही सुक्ष्म, वा तीव्र बुद्धी वाले सज्जन पुरुष ही इस पुस्तक के भावार्थको समझ करके आनन्दको प्राप्त होवेंगे। अन्य नहीं। क्यों कि तीव्र बुद्धी के बिना कोई २ बात समझ में नहीं आती इस लिए पूर्णानन्द की प्राप्ती भी नहीं होती। इस वास्ते सज्जनों को चाहिए कि किसी बिद्वान् से इस पुस्तकको श्रवण करें। जिससे कि सारी पुस्तक समझ करके पूर्णानन्द को प्राप्त हो। और पर-छिद्रा निवेशणी दुर्जन भी इसके अधिकारी नहीं हैं। क्यों कि सारग्राहिता रहित होने वा कुतर्क कि उत्पत्ति होने करके इस के आनन्द से वंचित ही रहैगा। इस वास्ते बुद्धीमान सज्जन ही इस पुस्तकके श्रवणके अधिकारी होवेंगे।

अथ विषय बरणन :—

जिस पुस्तक से जो बात सिद्ध की जाती है वही उस पुस्तकका विषय होता है। जैसे बेदान्त शास्त्र में जीव ब्रह्म की एकताका ही विशेष करके बरणन है। इस लिये जीव ब्रह्मकी एकता ही बेदान्त का बिषय है। तैसे ही इस पुस्तक में सागी नाटक अर्थात् एक कल्प तक शरीर वा भोगादि सागी का सागी मिलना सिद्ध किया जाता है इस लिये इस पुस्तकका सागी नाटक ही बिषय है।

अथ संबंध बरणन:—

अधिकारी का और फल का प्राप्य प्रापक भाव सम्बन्ध है। फल प्राप्य है और अधिकारी प्रापक है। जो वस्तु प्राप्त होवे सो प्राप्य कहाती है और जिसको प्राप्त होवे सो प्रापक कहाता है। तैसे ही उपकार प्राप्य है और अधिकारी प्रापक है इस से यह सिद्ध होता है कि यह पुस्तक अधिकारियों के लिये उपकार करने वाली है।

क्योंकि सर्व प्राणी सदाँ यही चाहते हैं कि हमारा शरीर सर्वथा उपस्थित रहे। जिसका कारण यह है कि सर्व को अपना ही शरीर अच्छा वा प्रिय लगता है इसी प्रकार से सबको सन्तानादिक भी अपने ही अच्छे वा प्रिय लगते हैं। औरों के पुत्र सुन्दर वा सुशिक्षित भी क्यों न हों परन्तु वैसा प्रिय नहीं लगता जैसा कि कुरूप और शिक्षाहीन होने पर भी अपना पुत्र। वैसे ही अन्यों का विशाल गृह भी अपनी टूटी फूटी झोपड़ी जैसा प्रिय नहीं लगता। तात्पर्य यह है कि सब को स्वाभाविक अपनी ही अपनी वस्तु प्रिय लगती है। यहां तक कि अपने मलमूत्रादिकनमें भी इतनी ग्लानी नहीं आती जितनी कि औरोंकेमें। यह बात सबों के अनुभव सिद्ध है। और सब लोग ईश्वर से यही प्रार्थना करते हैं कि हमारे कुटुम्बी वा इष्ट मित्रों से हमारा कभी बियोग न होवे। किन्तु हमेशा संयोग ही बना रहे जैसे कि इस समय में है।

आत्मभूवम्भूया समितिः।

इत्यादि शास्त्रों के वचनों से भी यही पाया जाता है कि तमाम जीव ईश्वर से उक्त ही प्रार्थना करते हैं। इस प्रार्थना से यह भी सिद्ध होता है कि सर्व प्राणी अर्थात् प्राणधारी जीव अपनी २ मोज में मस्त हैं। और यह पुस्तक सर्व जीवों के अनुकूल वार्त्ता को सिद्ध करता हुआ कहता है कि इस सृष्टी के अंत परयंत किसी का भी किसी सज्जन के साथ अत्यन्त बियोग कदापि नहीं होवेगा इसी कारण से यह पुस्तक सब के उपकार का हेतु है।

अथ प्रयोजन वर्णनः—

शोक और भय यही सब प्राणियों के दुख के हेतु हैं। इस लिये अधिकारियों को वर्तमान समय में ही शोक रहित निरभय आनन्दकी प्राप्ती का कराना ही इस ग्रन्थ का प्रयोजन है। सो शोक रहित

निरभय आनंद कि प्राप्ती इस प्रकार से होती है शोक उसी समय हुआ करता है जब कि, अपनी प्राप्त हुई प्रिय वस्तु का अत्यन्त वियोग हो अर्थात् भ्रांती करके यही निश्चय हो जावे कि अब इस वियोगाना वस्तु का कभी संयोग न होगा। परन्तु इस पुस्तक के देखने से अधिकारियोंकी यह भ्रान्ती नष्ट हो कर ऐसा निश्चय हो जायगा कि बिछुड़े हुए सज्जनादि कालान्तर में फिर भी मिल जायँगे। इसी लिये तो विद्वानों को किसी वस्तु के वियोग होने से दारुण शोक कदापि नहीं होता; और भय का छूटना इस प्रकार समझिये।

यह भय सब मनुष्योंको हमेशा बना रहता है कि इस शरीर के छूटने पर न मालूम हमको उन उत्तर जन्ममें पशु पक्षिआदि कौन २ सी योनि भोगनी पड़ैगी या क्या २ सुख:दुख देखने पड़ेंगे। बस यही तो एक बड़ा भारी भय है परन्तु इस पुस्तक के देखने से यह भी अविद्या जनितभय नष्ट होकर ऐसा निश्चय हो जायगा कि हम लोगोंके उत्तर जन्म में भी इसी जन्म के सदृश इसी शरीरको पा कर उनहीं अपने इष्ट मित्र वा कुटम्बियोंके साथ आनन्द पूर्वक रहेंगे। जब ऐसा निश्चय होगा तो भय का लेश भी नहीं रहैगा।

जब शोक और भय ये दोनों नष्ट हुए जब एक तो आनंद की प्राप्ती स्वाभाविक ही हो सकती है। दूसरे बहुत अद्भुत वागूढ़ रहस्यों के समझनेमें आजाने से भी आनन्दकी प्राप्ती हुआ करती है। बस यही इसके पढ़ने सुननेका प्रयोजन है। और सब सज्जनों के प्रति अनुकूलाचरण करके उनको प्रसन्न करना ही ग्रन्थ कर्ता का प्रयोजन है। क्योंकि प्राणियों को प्रसन्न करना ही शास्त्रों में भगवान् का पूजन कहा है क्यों कि सारा जगत परमात्माका ही स्वरूप होने से

येन केन प्रकारेण यस्य कस्यापि देहिनः।
प्रसाद जनयेद्धिान् तदेव हरि पूजनम् ॥

न जिस घरमें सालेजीकी पुत्री वा पुत्र न बसता होवे जैसा कि
उस समय इस पृथ्वीके इसी शहर में मौजूद हैं। और उसी पृथ्वी
म्बत ७७८६ पर रिड़मलजी के पुत्र जोधाजी और उनके पुत्र राव
बीकाजी होंगे। जब इस पृथ्वी पर बिक्रम सम्वत् २०४५ होवेगा
उस समय उस पृथ्वी पर राव बीकाजी शहर बीकानेर की नीव
डालेंगे। और फिर जब इस पृथ्वी पर विक्रम संवत् २४६९ होगा
उस समय उस पृथ्वी पर यही महाराजाधिराज श्रीजयन्ती महोत्सव
होंगे। इसी लिये कहते हैं कि यह श्रीजयंती महोत्सव जो इस
जन्म हो रहा है नूतन नहीं हैं।

जब महात्मा इस प्रश्नका उत्तर दे चुके तब सज्जन गण मारे हर्ष
के फूलने लगे और महात्मा कूँ बारम्बार धन्यवाद देते हुए कहने
लगे महाराज आपने हम लोगों पर बड़ी कृपा की इस लिए आपका
उपकार चिरकाल स्मर्णीय रहेगा इतना सुन कर महात्मा उठ खड़े
हुए क्यों कि उस समय रात्रि अधिक हो गई थी इस लिये उन्होंने
जाने की इच्छा प्रकट की परन्तु एकत्रित सज्जनगणों के हृदय में इसी
विषय पर कुछ और भी प्रश्न करनेकी इच्छा थी इस लिए उन्होंने
दूसरे दिन महात्मा के स्थान पर जा कर उन प्रश्नोंके उत्तर पूछनेका
निश्चयं किया। जो कि दूसरे भागमें लिखे जायगे और महात्मासे
भी इसके लिए निवेदन कर दिया। तत्पश्चात् महात्माने अपने
स्थानको प्रस्थान किया और एकत्रित सज्जन गणोंने भी महात्माकी
प्रशंसा करते हुए अपने २ घरोंकी राह ली।

अद्भुत विचार ग्रंथे

प्रथम भाग समाप्त।

कि जिस घरमें लालेजीकी पुत्री वा पुत्र न बसता होवे जैसा कि इस समय इस पृथ्वीके इसी शहर में मौजूद हैं। और उसी पृथ्वी नम्बर ७७८६ पर रिड़मलजी के पुत्र जोधाजी और उनके पुत्र राव बीकाजी होंगे। जब इस पृथ्वी पर बिक्रम सम्वत् २०४५ होवेगा उस समय उस पृथ्वी पर राव बीकाजी शहर बीकानेर की नीव डालेंगे। और फिर जब इस पृथ्वी पर विक्रम संवत २४६९ होगा उस समय उस पृथ्वी पर यही महाराजाधिराज श्रीजयन्ती महोत्सव करेंगे। इसी लिये कहते हैं कि यह श्रीजयंती महोत्सव जो इस समय हो रहा है नूतन नहीं हैं।

जब महात्मा इस प्रश्नका उत्तर दे चुके तब सज्जन गण मारे हर्ष के उछलने लगे और महात्मा कूँ बारम्बार धन्यबाद देते हुए कहने लगे महाराज आपने हम लोगों पर बड़ी कृपा की इस लिए आपका उपकार चिरकाल स्मर्णीय रहेगा इतना सुन कर महात्मा उठ खड़े हुए क्यों कि उस समय रात्रि अधिक हो गई थी इस लिये उन्होंने जाने की इच्छा प्रकट की परन्तु एकत्रित सज्जनगणों के हृदय में इसी विषय पर कुछ और भी प्रश्न करनेकी इच्छा थी इस लिए उन्होंने दूसरे दिन महात्मा के स्थान पर जा कर उन प्रश्नोंके उत्तर पूछनेका निश्चय किया। जो कि दूसरे भागमें लिखे जायगे और महात्मासे भी इसके लिए निवेदन कर दिया। तत्पश्चात् महात्माने अपने स्थानको प्रस्थान किया और एकत्रित सज्जन गणोंने भी महात्माकी प्रशंसा करते हुए अपने २ घरोंकी राह ली।

अद्भुत विचार ग्रंथे

प्रथम भाग समाप्त।

अद्भुत विचार ग्रंथे !

द्वितिय भाग प्रारंभः ॥

दूसरे दिन सायंकाल के समय जब यह मनुष्य महात्माके स्थान पर जा कर बाद नमस्कारादीके इस प्रकार पूछने लगे ।

प्रश्न—महाराज शास्त्र वेताओं से तो ऐसा सुना गया है कि ईश्वर की माया अनन्त है । इसकी थाह कभी नहीं मिलती, तो फिर आपने यह किस तरह कहा कि सब पदार्थ सागी के सागी ही होते हैं

उत्तर—सुनों भाईयो ईश्वर की माया प्राकृत मनुष्योंकी दृष्टीमें तो अनन्त ही है, परन्तु योगियोंकी दृष्टी में ऐसी अनन्त नहीं है और ईश्वरकी दृष्टी में तो यही माया बिलकुल तुच्छ है । इस वास्ते इस विषयमें केवल दृष्टी का ही फेर है । अर्थात जैसी जिसकी दृष्टि होती है वैसी ही माया प्रतीत होती है इस लिए तुमारी शंका बन नहीं सकती ।

प्रश्न—आपने कल कहा था कि कल्प भर में चौरासी लाख बार वैसा का वैसा ही शरीर होता है । इसमें कुछ शंका होती है क्यों कि शास्त्रों से चौरासी लाख जन्तुओंकी जाति तो पाई जाती है, परन्तु चौरासी लाख बार सागी ही शरीर का मिलना तो आज तक किसी से नहीं सुना । आप किस तरह कहते हैं ।

उत्तर—सुनो सज्जनों ! अपने शास्त्रों के वचन बहुत ही गंभीर हैं । यदि एक वचन पर भी पूरा २ मनन (विचार) किया जाय तो इन्हीं

एक वचन से कितने ही प्रकार के मतलब सिद्ध होते हैं। इसी वास्ते श्रवण के बाद मनन, करने की आज्ञा है। क्योंकि बहुत शूक्ष्म पदार्थ मनन करने से ही बुद्धी में आते हैं। अब देखिये एक ही वचन से कितने २ मतलब निकलते हैं और वे सब माननीय समझे जाते हैं। जैसे कि भगवद्गीता।

श्लोक:—

या निशा सर्व भूतानां तस्यां जाग्रति संयमी।
यस्यां जाग्रति भूतानि सा निशा पश्यतो मुने:॥

अर्थ—जो सर्व भूत प्राणियों की रात्री है उस में संयमी पुरुष जागते हैं और जिसमें सर्व प्राणी जागते हैं उसे योगी लोग रात्रिकी तरह देखते हैं बस यही इसका अक्षरार्थ है अब भावार्थकी तरफ ध्यान दीजिये।

कई फक्कड़ लोग धूनी तापने वाले इस श्लोकका आसय यह लेते हैं कि हम योगियोंको रात्रि में जागना और दिन में सोना चाहिये; और स्वरोदयके अभ्यास करने वाले संत इस श्लोक का आशय यह लेते हैं कि हम योगियों को रात्रि में सूरज का और दिनमें चन्द्रमा का स्वर चलाना चाहिये। क्यौंकि सूरज स्वर जागना और चन्द्रमा का स्वर सोना माना जाता है। स्वरोदयके अभ्यासियों के इस, आशय को सिद्ध करने के लिए एक दोहा भी प्रचलित है। सो यह है।

दोहा।

दिन चलावैं चन्द्रमा, रात चलावे सूर।
जोगी यह साधन करैं, होय उमर भरपूर॥

और भी सुनिए बेदान्ती बिद्वान लोग इसी श्लोक का आसय

यह लेते हैं कि परमार्थ सत्ता, अर्थात आत्म साक्षातकार सर्व भूत प्राणियों को रात्रि की नाई, अप्रत्यक्ष है। उस परमार्थ सत्ता में संयमी (योगी) लोग जागते हैं अर्थात् हर समय उपस्थित रहते हैं। और व्योहारिकसत्ता में जो कि सर्व भूत प्राणी जागते हैं उसी व्योहार सत्ता को योगी लोग रात्रिकी तरह देखते हैं। अर्थात् स्मरण रहित रहते हैं और दूसरे भी सुनिये एक समय, दानव, देवता, और मनुष्य तीनों ही ब्रह्माजी के पास गये और उन्होंने उपदेश की प्रार्थना की जिस पर महाराज ने एक दकार अक्षर से ही तीनोंको उपदेश किया। अर्थात् केवल 'द' इतना ही कहा।

इस 'द' का अर्थ दानवोंने यह समझा कि हम लोग निर्दई हैं। इस लिए मनुष्यादि जो कोई मिलता है उसे बिना मारे नहीं छोड़ते इस वास्ते महाराजने हमे 'द' शब्द करके दया रखने के लिए ही कहा है।

देवताओं ने इसी 'द' शब्द का अर्थ यह समझा कि हम लोग स्वर्ग के दिव्य भोगों की प्राप्ती से संसारि बिशयों में लम्पट हो रहे हैं। और विषय लमटोंका पुण्य क्षीण होनेके पश्चात् दुर्गति हुआ करतीहै।

इस कारण से महाराजने हमे 'द' शब्द करके इन्द्रियों को दमन करने का उपदेश दिया है। और मनुष्यों ने इसी 'द' शब्द का अर्थ यह समझा कि महाराजने हमें 'द' शब्द करके दान देने का उपदेश दिया है। क्यों कि हम लोग द्रव्योपारजन करने में अनेक पाप कर लेते हैं। और द्रव्य के ही कारण सनातन प्रीती को छोड़ कर पिता पुत्र भ्राता २ परस्पर द्वेश कर बैठते हैं। इस लिए इस द्रव्य से मोह छोड़ कर हीनों के प्रती दान करने का और अपने कुटम्बी वा इष्ट मित्रादिकों के दुखोंको दूर करने के वास्ते द्रव्य खर्च करना इत्यादि महाराज ब्रह्माजीने 'द' शब्द करके दान का ही उपदेश दिया।

है। जब उदार चित्त से द्रव्य खर्चेगा तो द्रव्य से मोह छूटने करके अनेक सद्गुणों की प्राप्ती भी होवेगी और अनेक अपगुणों का भंडार लोभ भी दूर हो जायगा। जिस लोभ को महाराज भर्तृहरिने भी अपगुणोंका भंडार कहा है।

"लोभश्चेद गुणेन किम्।"

अर्थ :—जिसमें एक लोभ है उसको अन्य अपगुणों से क्या प्रयोजन है अर्थात् लोभ से सब ही अपगुण इकट्ठे हो जाते हैं।

अब बिचारिए कि जैसे ऊपर लिखे अनुसार एक ही संकेत से कई आसय मिलते हैं और वे सब यथार्थ हैं। और अपने २ प्रकरण में ठीक घट भी जाते हैं। तैसे ही इन चौरासी लाख के एक संकेत से भी कई प्रकारके मतलब निकलते हैं। सो भी यथार्थ और अपने २ प्रकरण पर ठीक घटने वाले हैं। यही तो हमारे शास्त्रों की गंभीरता है। अब सुनो कोई तो कहते हैं कि चौरासी लाख प्रकारके नरक हैं जिनों में यमराजकी आज्ञानुसार पापात्माओंको यम किंकर अनेक प्राकार की यातना भोगा रहे हैं और कोई कहते हैं कि चौरासी लाख प्रकारकी जीवों की योनिया हैं। और हठयोगवाले कहते हैं कि चौरासी लाख प्रकार का आसन है। और मेरे अनुभव में यह आता है कि जीवों के चौरासी लाख एक से ही शरीर होते हैं सो कल्प पर्यन्त वारम्बार बदले जाते हैं। जैसा कि मैं पहिले कह चुका हूँ परन्तु सूक्षम रीतिसे बिचारा जावे तो शरीर तो एक ही है। उसी शरीर का समय २ पर प्रादुर्भाव तिरोभाव होता रहता है। कार्य होकर दृष्टी में आने वाले को प्रादुर्भाव कहते हैं। और कारण में लय होकर अदृष्ट होने वालेको तिरोभाव कहते हैं। सत॰ कार्य वादको मानने वाले होने से वेदान्त और सांख्य शास्त्र ने भी

ऐसा ही माना है। कि उत्पन्न होने से पहिले भी कारण में कार्य मौजूद था। और नाश होने पर भी कारण में कार्यलय हो कर के मौजूद ही रहता है। अर्थात किसी सतवस्तु का किसी काल में भी कदापि नाश नहीं होता। और जैसे सत वस्तु का अभाव तीनों कालों में नहीं होता तैसे ही असत बस्तु का भाव अर्थात् प्रकट होना कदापि नहीं होता। ऐसा ही श्रीभगवानने भी कहा है:—

नासतो विद्यते भावो नाभावो विद्यते सतः।
उभयोरपि दृष्टोऽन्तस्त्वनयोस्तत्वदर्शिभिः॥

अर्थः—सत्य वस्तुका अभाव नहीं होता और असत्य वस्तुका भाव नहीं होता इन दोनों को तत्व दर्शी पुरुष अच्छी तरह जानते हैं इनसे भी सिद्ध होता है कि पहिले कारण में जो उपस्थित रहती है वही वस्तु प्रकट होती है। अन्य कदापि नहीं।

ऋग्वेद का मंत्रः—

सूर्य्या चन्द्र मसोधाता यथा पूर्वम् कल्प यत्।
दिवञ्च पृथिवीञ्चान्तरिक्ष मथोस्वः॥

अर्थः—विधाताने पूर्व कल्प में जैसे सूर्य्यादिलोंको को रचा था वैसे ही इस कल्प में भी रचे हैं।

इस मन्त्र से भी यह सिद्ध होता है कि अन्य कल्पोंमें भी इस कल्प के सदृश ही सृष्टी होवेगी। जब इसी प्रकार सृष्टी होवेगी तो इन ही शरीरों का जो इस कल्प में स्थित हैं फिर प्रादुर्भाव होता रहेगा।

प्रश्न—शास्त्र कथित परोपकारादि शुभ कर्म करने वालों को स्वर्गादि सुखों का भोग मिलना और पर पीड़ादि निषेध कर्म करने वालोंको नरकादि दुःख मिलना इत्यादि कर्मानुकूल कर्म फलों का होना आप मानते हैं या नहीं।

उत्तर—एक चार वक अर्थात् (नास्तिक) को छोड़ कर अन्य सर्व मत मतान्तरों वाले कर्मानुकूल कर्मफलको मानते हैं ऐसे ही मैं भी मानता हूँ।

प्रश्न—जब आप शास्त्र कथित कर्मानुकूल फलों का होना मानते हैं तो फिर वैसा का वैसा मनुष्य शरीर और वैसा का वैसा भोग मिलना किस प्रकार कहते हैं। क्यों कि शास्त्रानुकूल चलने वालों को तो देश काल शरीर और भोगादि उत्तर शरीरमें उत्तम मिलने चाहिये। और निषेध कर्म करने वालों को नीच शरीर और दुष्ट भोगादि फल मिलने चाहिये। और सर्व मनुष्योंका एकसा कर्म तो कभी हो ही नहीं सकता कि जिससे सब ही को फिर मनुष्य और वैसा का वैसा ही शरीर मिले। इसी कारण से आपके कथनानुसार सांगी नाटक का होना क्यों कर माना जावे।

उत्तर—मैं भी तो यह नहीं कहता कि सारे ही मनुष्योंका एकसा कर्म होता है; जिन कर्मों के फल करके फिर पीछे सांगी का सांगी ही मनुष्यादि शरीर मिलता है। क्यों कि मनुष्य शरीर से किए हुए कर्मों के फलों से ही तो पशु, पक्षादिकनकी योनि मिलती है। परन्तु पहिले इस बात का निश्चय होना आवश्यक है कि किये हुए कर्मोंका फल कितने वर्षोंके पश्चात् भोगने में आता है। कर्म भी दृष्ट और अदृष्ट भेद करके दो प्रकार के होते हैं। जिसमें दृष्ट कर्मोंके फल तो किंचित् काल में ही हो जाता है। जैसे कि भोजन किया तृप्ती आई, गाली दी थप्पड़ की खाई और दूसरा अदृष्ट कर्म जिसके वास्ते कदाचित कोई कहे किसी शास्त्र में तो ऐसा लेख देखने में नहीं आया कि किये हुए कर्मों का फल इतने वर्षोंके बाद भोगने में आता है। परन्तु अनुमान से जाना जाता है कि इस शरीर से किये हुए कर्मों के फल को कोई तो इसी शरीर से भोग चुकते हैं जैसे कि किसीने

मनुष्य हत्या की और उसके फल में फँसी पाई। और कोई ऐसा भी कर्म होता है जिसका फल इस शरीर को छोड़ देनेके बाद स्वर्ग अथवा नरक पाते हैं। और कई कर्मोंके फलोंको दूसरे वा तीसरे जन्मोंमें भोगते हैं। ऐसा कोई नेम नहीं है कि किए हुए कर्मों का फल इतने वर्षोंके बाद ही भोगने में आता है।

यह अनुमान करना ठीक नहीं और कर्मों के फल भोगने में कोई नेम नहीं ऐसा कहना भी उचित नहीं है। क्यों कि यह जगत सर्वज्ञ ईश्वर की रची हुई है। इसमें सब बातोंका नेम है यहां तक कि नियम के विरुद्ध वृक्ष का एक पत्ता भी नहीं हिल सकता। तो फिर कर्म तो बहुत ही बड़ी बात है जिसके वास्ते नियम नहीं ऐसा कभी नहीं हो सकता क्यों कि संसार के चलने की जड़ ही तो यह कर्म है। जैसे २ कर्म किये जाते हैं वैसे ही वैसे शरीर वा भोगादि मिलते रहते हैं यही तो सृष्टी के चलने का क्रम है। इस लिये यही कहना चाहिये कि नियम तो जरूर है परन्तु शास्त्रोंमें कहीं प्रगट रीति से ऐसा नहीं देखने में आया कि इतनी अवधि तक में कर्मोंका फल पक कर भोग देने के योग्य होता है। इसी कारण से हम लोग नहीं जानते कि कर्मों का फल कितने समय से मिलता है।

और कदापि कोई हठ पूर्वक कहे कि कर्मोंके फल भोगने में समय का नियम हैही नहीं तो उनसे पूछना चाहिये कि आज किसीने शुभ वा अशुभ कर्म किया उस कर्म का फल कर्म कर्ताको वैसा और इस समय में मिलेगा ऐसा ईश्वर को मालूम है या नहीं।

यदि ऐसा कहा जाय कि ईश्वरको भी विदित नहीं है तो ईश्वर के त्रिकालदर्शी और सर्वज्ञ होने में शंका होती है व शास्त्रों में भी दोष आवेंगे। क्यों कि शास्त्र में ईश्वर को सर्वज्ञ और त्रिकालदर्शी कहते हैं। और यदि कहा जाय कि ईश्वरको विदित है कि इस कर्म का

यह फल कर्म—कर्ताको उस काल में मिलेगा। तो कर्म कर्ताको कर्मोंका फल इतने समय के पश्चात् मिलता है ऐसा नियम का होना भी निश्चय हो चुका। निसंदेह यही कहना पड़ेगा कि नियम तो है परन्तु हम नहीं जानते। कि कितने समय के बाद कर्मोंका फल मिला करता है।

और यह जानना कि किसीको तो कर्म फल इसी शरीर करके शीघ्र ही भोगने में आजाते हैं जैसे कि राज्य दंडादि करके और किसी को देर से मिलता है सो जानना ठीक नहीं। क्यों कि जब पाँच मनुष्योंने एक समय में एकसा ही कर्म किया फिर उनमें एक को तो इसी जन्ममें फल मिले दूसरे को मरने के बाद। अन्यों को दूसरे तीसरे जन्मों में मिले ऐसा अँधेर ईश्वरके नियम में क्या कभी हो सकता है? नहीं २ कभी नहीं। किन्तु उन सब को कर्मोंका फल एक ही काल में और एक साही मिलैगा। क्यों कि जब उन सबोंने एक ही कालमें एक साही कर्म किया था।

और इसी शरीर से किये हुए कर्मों का फल इसी शरीर करके राज्य दंडादि द्वारा मिलता है ऐसा भी जानना ठीक नहीं है क्यों कि "गहना कर्मणांगति" इस वचन से जाना जाता है कि कर्मोंकी गति गहन अर्थात् बहुत सूक्ष्म है। तत्ववेता पुरुषोंके और देवों के भी समझने में नहीं आती तो प्राकृत मनुष्योंकी तो बात ही क्या जो कुल कर्मों का फल कर्मानुकूल दे सके। राज्य दंड इस समय के किये हुए कर्मोंके फलों को नहीं भोगाता किन्तु राजा अपनी प्रजा को निषेध कर्म करने से भय दिखला कर रोकते हैं। और कानून द्वारा यह भी शिक्षा देते है कि अमुक कर्म करोगे तो ऐसे २ दंड पावोगे।

अब सुनिए कर्मोंका फल इतने समय में पक कर भोग देने

योग्य होता है। ऐसा तो मैं नहीं कह सकता, परन्तु शास्त्रोंके आशय को लेकर गणित द्वारा यह तो ठीक जचता है कि एक कल्प अर्थात् आठ अर्ब चौसठ करोड़ बर्षों तक की समय से पहिले तो किए हुए कर्मों का फल कोई भोग ही नहीं सकता। क्यों कि विचार करके देखिये यदि एक हजार बर्ष तक की अवधी में यदि कर्म फल भोगना माना जावे तो महा प्रलय से दो सौ वर्ष पहिले किये हुए कर्मोंका फल प्रलय के शुरू से आठ सौ बर्ष पश्चात् अर्थात् प्रलय के बीच ही में भोगने में आना चाहिये। परन्तु महा प्रलय में कोई जीव कर्म फल भोगही नहीं सकता। क्यों कि पूरी समय के बीच में प्रलय भी टूट नहीं सकती और फल देने के योग्य हुआ कर्म भी अपना कार्य्य किए बिना नहीं ठहरता। इस लिए यदि एक कल्प से पहिले कर्मों का फल मिलना माना जाय तो महा प्रलय आदि बाधाएं पड़े बिना कदापि न रहेगी। इस लिये यही सिद्ध होगा कि एक कल्प तकका समय अर्थात् आठ अरब चौसठ करोड़ बर्षों से पहिले कर्मोंका फल होना असम्भव है।

और यह भी सिद्ध होता है कि इस कल्प के जिस भाग में जो कर्म किया जायगा उसका फल अन्य कल्प के उसी भाग में भोगने में आवेगा और महा प्रलय के समय न तो कोई कर्म करता है और न किसी को कर्म फल भोगने में आता है।

कदाचित कोई कहे कि महा प्रलय के बीच में तो कर्मोंका फल भोगा नहीं जाता इस लिए महाप्रलय के बीचमें पकने वाले कर्मोंका फल महाप्रलय से पहिले या अन्त में क्यों न भोगा जावे और एक कल्प के बाद इतनी देर से कर्मों का फल होना क्यों माना जावे। तो सुनिए कि शास्त्रों में यह सुस्पष्ट रीति से लिखा है कि जब जीवोंके कर्मों का फल भोग देने के सन्मुख होता है उसी समय ईश्वरकी यह इच्छा होती है कि जीवों के कर्मों का फल भोगनेके वास्ते

सृष्टि उत्पन्न होवे। इस से यह सिद्ध होता है कि जीवोंके कर्मोंके फल भोगनेके सन्मुख होने के निमित से ही सृष्टी की रचना होती है। बस इससे यह भी सिद्ध हो चुका है कि कर्मोंका फल पूरे समय से पहिले वा पश्चात् भोगाया नहीं जाता किन्तु जिस समय जीवोंका कर्म फल देने लायक होता है उसी समय ईश्वरको भी जीवोंके कर्म फलों को अवश्य ही भोगाना पड़ता है। इससे यह ठीक सिद्ध हो चुका कि इस कल्प में किए हुए कर्मोंका फल तो इस कल्प में भोग ही नहीं सकता। इस वास्ते कर्मोंकी विचित्रता होने से तो मेरे माने हुए नाटकमें किसी प्रकार का दोष नहीं आता।

प्रश्न—महाराज गणित और युक्ती द्वारा तो यह सिद्ध हो गया कि किये हुए कर्मोंका फल आठ अर्ब चौसठ करोड़ वर्षोंसे पहिले नहीं मिल सकता। परन्तु इसी विषय में यदि शास्त्रोंका आशय भी कोई मिल जाय तो आपके कथन में पूरा विश्वास हो जाय। यदि स्मरण है तो बतलाइए।

उत्तर—हाँ है सुनिये:—शास्त्रोंका आशय भी एसा ही पाया जाता है कि कर्म कर्ताको कर्म फल देनेके सनमुख दीर्घ काल में ही हुआ करता है देखो वेदान्त शास्त्रमें कर्म तीन प्रकार के कहे हैं; प्रालब्ध, क्रियमाण (आगामी) और संचित इन तीनों में प्रारब्ध कर्म उसको कहते हैं कि जिन कर्मोंका फल पक कर भोग देनेके सनमुख हो चुका हो और इसी शरीर करके तमाम भोग लिया जायगा। जिन कर्मोंके भोग करके नष्ट होने से शरीर भी नष्ट हो जायगा। इसीको प्रारब्ध कर्म कहते हैं। और जो कर्म इन वर्तमान शरीर करकें कर चुके हैं वा कर रहे हैं वा करते रहेगें। इन्हीं कर्मों को आगामी कर्म कहते हैं। अब संचित कर्मोंको ध्यान पूर्वक सुनिये। अनन्त कोटि जन्मोंका किया हुआ शुभाशुभ कर्म आज तक पक कर अपना फल सुख दुखादि देने के सन्मुख नहीं हुआ और अनन्त

कोटि जन्मों तक में इन संचित कर्मों का फल सुखदुखादि भविष्यत काल में भोगा जायगा उनको संचित कर्म कहते हैं। यह तो आप सुन ही चुके अब एक स्मृतिको भी सुनिए।

अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभा शुभम्,
नाभुक्तं क्षीयते कर्म कल्प कोटि शतै रपि।

अर्थ किए हुए शुभाशुभ कर्मों का फल, अवश्य ही भोगना पड़ेगा। बिना भोगे सो कोटी कल्पों तक भी कर्म क्षीण नहीं होता।

अब देखिये कर्मों का फल शीघ्र ही मिलना माना जाय तो संचित कर्म के विधान में ऐसा कभी नहीं कहा जाता कि अनन्त कोटी जन्मों का किया हुआ कर्म अभी तक फल देने के सनमुख नहीं हुआ किन्तु आगे अनन्त कोटी जन्मों में ही फल देनेके सनमुख होवेगा। इनसे और उपरोक्त स्मृती बचन से यह सुपष्ट है कि किये हुए कर्मोंका फल बहुत समयके पश्चात ही मिलता है। क्यों कि जिस शरीर करके जिस समय कर्म किया जाता है उस समय तो वोही कर्म आगामी गिने जाते हैं। फिर शरीर पातके अनन्तर, वही कर्म, संचित कर्मों में मिलने करके संचित कर्म कहलाते हैं। जब फिर उन्हीं कर्मोंका फल पक कर भोग देनेके सन मुख होता है तब उन्हीं कर्मोंको प्रारब्ध कर्म कहते हैं। इन्हीं प्रारब्ध कर्मों के भोगने के वास्ते ही शरीर की उत्पत्ति होती है। और भोगों करके कर्मोंके क्षीण होने से शरीर भी नष्ट हो जाता है। यही शास्त्रोंका सिद्धान्त पाया जाता है। अब इस विषय में यह विचार उपस्थित है कि अनन्त कोटी जन्मों तक संचित कर्मोंका फल भोगनेमें नहीं आता है इसमें कोई निमित्त है या स्वाभाविक।

कदाचित कोई कहे कि किसी निमित्त से संचित कर्म दबे रहते होंगे इस वास्ते फल देने के सनमुख जल्दी नहीं होते सो तो बन

नहीं सकता। क्यों कि जीव तो कर्मोंके फलोंको भोगनेमें स्वतंत्र नहीं है। इस लिए जीव सम्बन्धी तो कोई निमित्त बन नहीं सकता। किन्तु ईश्वर ही सर्व जीवोंको समय २ पर कर्मानुकूल फल प्रदान करते हैं। सो सर्वज्ञ होने से ईश्वर में ऐसा दोषा रोप कोई भी कर नहीं सकता कि भूलजाने आदी किसी निमित्त को ले कर के जीवों को ठीक समय पर ईश्वर कर्मोंका फल न दे सकता हो।

इस लिए यही माना जायगा कि स्वभाविक ही कर्म फल बहुत समय से पक कर फल देनेके सनमुख होते हैं परन्तु शुभाशुभ कर्मोंका साधारण फल वा मुख्य फल इन भेद करके दो प्रकारके होते हैं जैसे कि वृक्ष लगाने का फल साधारण छाया रूप फल तो थोड़े ही कालमें होजाता है परन्तु आम आदि मुख्य फलोंकी प्राप्ति तो दीर्घ काल में ही होती है तैसे ही शुभ कर्मी पुरुष कूँ इस लोक परलोक में जगे २ धन्यवाद मिलना और निषेध कर्म करने वालोंकू उभयलोक में धिकारादि मिलना यह तो छाया कि तरह साधारण फलका मिल ना तो तुरन्त ही सुरु हो जाता है और कल्पों पर्यन्त इज्जतमें सामल रहता है तब तककी मुख्य फल न भोगने में आया हो और मुख्य फल एक कल्प तक की समय से पहिले नहीं मिल सकता इस को सिद्ध करनेके लिये यह शास्त्र का आशय भी आपको वतला चुके अब और कुछ पूछना हो सो निसन्देह पूछिए।

प्रश्न—महाराज ! आपके कथन से तो यह सिद्ध होता है कि इन चौरासी लाख जन्मों के शरीरोंकी चेष्टा सागी ही रहती है क्यों कि यदी चेष्टा अन्यान्य जन्ममें अन्यान्य प्रकारकी होनी मानी जाय तो सागी नाटक भी नहीं हो सकता इसलिए पहिले जन्म के सदृश ही दूसरे जन्ममें चेष्टा के होनेमें कोई प्रमाण याद होवे तो वतलाइये।

उत्तर—हाँ यहाँ पर जन्म के सदृश चेष्टा होने में बहुत से प्रमाण पाये जाते हैं परन्तु समय अधिक जानेके भयसे गीता का एक ही प्रमाण देता हूँ सुनिए।

सदृशं चेष्टते स्वस्याः प्रकृतेर्ज्ञानवानपि ।
प्रकृतिं यान्ति भूतानि निग्रहः किं करिष्यति ॥

अर्थ—प्रकृति ज्ञानवान को भी सदृश अर्थात वैसी की वैसी सागी चेष्टा करा देती है। तो फिर प्राकृत मनुष्य उस प्रकृती को किस तरह रोक सकेंगे। इससे आप समझ लीजिये कि कल्प भरके सर्व जन्मों में चेष्टा एकसी ही होती है।

प्रश्न—महाराज यह भी तो बतलाइए कि प्रकृती सागी चेष्टा सर्व जन्मोंमें किसीकी प्रेरणा से कराती है वा स्वयं।

उत्तर—प्रकृती स्वयं तो जड़ है इस लिए वो स्वतः सागी चेष्टा नहीं करा सकती परन्तु ईश्वर की प्रेरणा से ही वो वैसीकी वैसी चेष्टा कराती है। जैसा कि गीता में लिखा है।

श्लोक—

ईश्वरः सर्व भूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति ।
भ्रामयन्सर्व भूतानि यन्त्रारूढानि मायया ॥

अर्थ—जैसे कोई यन्त्र में अपने बलको आरूढ करके यन्त्रको घुमाता है तैसे ही ईश्वर सर्व भूत प्राणियोंके हृदय देश में स्थित हो कर माया रूपी यन्त्र से सर्व प्राणियोंको घुमारहा है। अर्थात् चेष्टा करा रहा है।

और पाँडव गीताके श्लोक से भी यही साबित होता है कि कोई अन्तर्यामी हृदय में स्थित है वो जैसी प्रेरणा करता है वैसा ही हम लोगोंको करना पड़ता है।

जो यह श्लोक है—

(महाराज दुर्योधन का बचन)

जानामि धर्मं नच मे प्रवृत्तिः

जानाम्यधर्मं नच मे निवृत्तिः॥

केनापि देवेन हृदिस्थितेन

यथा नियुक्तोस्मि तथा करोमि॥

अर्थ—मैं धर्मको सुख का हेतु जानता भी हूँ परन्तु धर्म पूर्वक आचरण करनेमें मेरी प्रवृत्ति नहीं होती और अधर्म को दुःख का हेतु भी जानता हूँ परन्तु अधर्म करने से मेरा चित्त नहीं हटता इस लिये मैं निश्चय कर के जानता हूँ कि कोई देव अर्थात् अन्तर्यामी मेरे हृदय देह में विराजमान हैं यह देव मेरे चित्त विषय जैसी प्रेरणा करता है वैसा ही मुझ को करना पड़ता है।

प्रश्न—महाराज सर्व जीव परमात्माकी प्रेरणानुसार ही चेष्टा करते हैं तौ परमेश्वर में भी पक्षपातादि दोषारोप करना पड़ेगा। क्यों कि परमेश्वर किसी को तो अच्छी प्रेरणा द्वारा सुख का भागी बना देते हैं और किसी के हृदय में बुरी प्रेरणा करके अथाह दुख में डुवा देते हैं। और शास्त्र वेत्ता विद्वान् तो परमेश्वर को न्यायाधीश, दयालु कहते हैं। सो प्रेरक और न्यायाधीश व दयालु यह सर्व परस्पर विरुद्ध वार्तायें एक परमेश्वर में किस तरह घट सक्ती हैं। यह शंका दीर्घ काल से ही हमारे चित्त को क्षोभित कर रही है इस लिये कृपा करके हम लोगों की यह भी शंका आप निवारण कर दीजिए।

उत्तर—प्रियजनों विद्वानोंका कहना वहुत ठीक है परमेश्वरमें कोई भी किसी प्रकार का दोषा रोप हो ही नहीं सक्ता जिसका कारण यह है। परमात्मा अन्तर्यामी सर्व जीवों की बुद्धि रूपी

गुहा में विराज मान होकर प्रेरणा करता है, परन्तु प्रारब्ध कर्म के अनुसार ही प्रेरणा करता है अपनी इच्छा से नहीं करता इस वास्ते पक्ष पात रहित है। और जैसा जिस जीवका पूर्व जन्मोंका संग्रह किया हुआ कर्म है उसी के मुताविक उस जीवको फल प्रदान करने से ही परमात्मामें न्यायाधीश पना सिद्ध होता है और जिस कर्म का फल उस समय पक कर फल देने के सन्मुख होवेगा तो ठीक उसी समय ही फल दान करने कर के अथवा वेदादि द्वारा शुभ सुख का हेतु उपदेश करने करके ईश्वर में दयालुता भी सिद्ध होती है। इस प्रकार एक ही ईश्वर में प्रेरकता और न्यायाधीशता और दयालुता तीनों ही लक्षण घट सक्ते हैं।

प्रश्न—महाराज यदि वारंबार सागी ही नाटक हुआ करता है तो फिर मनुष्योंको इष्ट पदार्थों की प्राप्ति के लिये कोई पुरुषार्थ करने की जरूरत ही नहीं रहेगी क्यों कि कोई पुरुषार्थ करो या मत करो वार्ता तो वही होवेगी जो पहिले नाटक में हो चुकी थी इस लिये सागी नाटकके मानने से पुरुषार्थ में स्थिलता रूपी दोष आता है सो शास्त्रों से विरुद्ध है।

उत्तर—प्रियजनों! पुरुषार्थ कोई फल रूप नहीं है किन्तु पुरुषार्थ ता केवल फलका द्योतक (चिन्ह है) अर्थात् फलको जताने वाला है और विद्वान लोग चिन्ह को देख कर ही अनुमान द्वारा भावी ज्ञान का अनुभव किया करते हैं।

दृष्टान्त—जैसे जल पूरत बादलों को देख कर के ही अनुमान होता है कि बारष आने वाली है क्यों कि वादल वारिष का द्योतक (चिन्ह) है जब बादलादि वारिष के चिन्ह ही नहीं दीखते तो वारिष का होना असम्भव है।

दृष्टान्त—तैसे ही पुरुषार्थ करने वाले मनुष्यों को देख कर के

अनुमान होता है कि पूर्ण पुरुषार्थ होने से इन लोगों को इष्ट फल की प्राप्ति जरूर होवेगी और जो मनुष्य पुरुषार्थ हीन है उस के लिये इष्ट फल प्राप्ति की शंका भी नहीं होती।

इन से यह सिद्ध होता है कि जिस पुरुष को इष्ट फल की प्राप्ति पूर्व नाटक में हुई है और अब होने वाली है उस मनुष्य की बुद्धि में तो पुरुषार्थ करने की ही प्रेरणा हुआ करती है और जिस मनुष्य को पहिले नाटक में इष्ट फल नहीं प्राप्त हुआ है और अब भी प्राप्त होने वाला नहीं है उस की पुरुषार्थ करने में रुचि भी नहीं होती इस लिये सागी नाटक को मान कर के पुरुषार्थ में किसी प्रकार की शिथलता नहीं आसक्ती।

प्र० महाराज सागी की सागी चेष्टा व नाटक का होना तो आपने अच्छी तरह से सिद्ध कर दिया और हम लोगों की बुद्धि में भी ठीक जच गया। परन्तु आप कहते हैं कि पांच पांच सौ वर्ष से यह सागी नाटक हुआ करता है सो पांच पांच सौ वर्ष से इस नाटक का होना। अभी तक हमारी बुद्धि में नहीं जचा इस लिये कृपया किसी प्रमाण के जरिये से यह भी हमारी बुद्धि में ठीक जचा दीजिये जिस से कि इसी बिषय में भी हमारे चित्त विषय कोई शंका न रहे।

उत्तर—प्रिय जनों पांच पांच सौ वर्ष से सागी नाटक का होना गणित द्वारा इस प्रकार सिद्ध होता है सो चित्त देकर सुनिये।

महाराज ब्रह्माजी के एक दिन में मनुष्यों का चार अरब बत्तीस करोड़ वर्ष होता है जिसमें बारह करोड़ वर्ष जगतकी रचनावस्थामें लग चुकने पर शेष चार अरब वीस करोड़ वर्ष रहते हैं यह हम पहिले ही कह चुके थे सो आपको स्मरण ही होगा। इन चार अरब बीस करोड़ वर्षोंमें चोरासी लाख जन्म होना तो पांच पांच सौ वर्ष से ही एक एक जन्मका होना सिद्ध होता है क्योंकि चार

अरब बीस करोड़ (४,२०००००००) को चौरासी लाख (८४०००००) का भाग निकालने से पांच सौ (५००) ही मिलेगा बस इसी हिसाब से ही पांच पांच सौ वर्ष से पुनर्जन्म होना सिद्ध होता है और जो बात हिसाब से सिद्ध होती है वह बार्ता कदापि शास्त्रों में स्पष्ट रीति से न भी मिले तौ भी उस को प्रत्यक्ष प्रमाण के सदृश सिद्ध ही समझनी चाहिये क्यों कि बहुतसी बातें शास्त्र में स्पष्ट रीति से नहीं मिलती केवल विचार द्वारा ही सिद्ध की जाती हैं। इसी लिये श्रवण के पश्चात् मनन करने की शास्त्र आज्ञा देते हैं मनन विचार दोनों पर्याय शब्द अर्थात् एक अर्थ वाचक है। और जैसे किसीने पूछा कि चौरासी लाखको पांच सौ का गुणा देने से कितना होता है। तो इसका जवाब देनेके लिये कोई भी विद्वान् शास्त्रोंका पत्रा नहीं सभालता, क्यों कि किसी शास्त्र में भी इसका जवाब स्पष्ट रीति से लिखा हुआ नहीं मिलता, किन्तु गणित द्वारा विचार से ही इसका जवाब देता है कि चार अरब बीस करोड़ होवेगा। और इस जवाबको शास्त्रोंमें नहीं मिलने पर भी सब लोग मंजूर करते हैं तैसे हीं गणित रूपी विचार से सिद्ध हुआ पांच २ सौ वर्षों से एक एक नाटक का होना अर्थात् पुनर्जन्म होना किसी शास्त्र में स्पष्ट रीति से नहीं भी मिले तौ भी मंजूर करने योग्य है क्योंकि गणित (ज्योतिष) वेदों के षट अंगों में से एक अंग होने करके वेदोंके सदृश ही मान्य है, इसलिये और कोई प्रमाण इस विषय में ढूंढने की आवश्यकता नहीं है।

प्रश्न—महाराज! कल्प तक के समयमें चौरासी लाख जन्मोंके होने से तो हिसाब द्वारा पांच २ सो वर्षों से पुनर्जन्म होना ठीक मिलता है, परन्तु सर्व समयोंके सर्व मनुष्योंका पांच २ सौ वर्ष से ही पुनर्जन्म होता है, ऐसा मानना शास्त्रों से विरुद्ध मालूम पड़ता

है, क्योंकि पुराणादिकनमें कहीं ऐसा भी लेख सुनने में आता है कि सतयुगमें मनुष्योंकी एक लाख वर्षकी आयु होती थी, सो ही त्रेता युगमें दस हजार, द्वापर में एक हजार और कलियुगमें एक सो वर्ष की रह गई।

इसी लेखके अनुसार ही श्रीवाल्मीकजी ऋषिने रामायणमें कहा है कि श्रीरामचंद्रजीने त्रेता युगमें अवतार होनेके कारण ग्यारह हजार वर्ष राज्य किया था, और आप कहते हैं कि सर्व युगोंके सर्व पृथिवयोंके मनुष्य पांच २ सो वर्षसे दूसरी पृथवी पर जाय कर जन्मते हैं अर्थात् पांच सो वर्षसे अधिक आयु कोई भी किसी समयमें नहीं पाता इसलिये शास्त्रों से बिरुद्ध होने करके आपका कलपा हुवा सागी नाटक कपोल कलपितसा ज्ञात होता है, किन्तु मानने योग्य विदित नहीं होता।

उत्तर—सभ्यजनों! क्या तुम लोगोंने मेरे वाक्योंको शास्त्र बिरुद्ध मन गढ़ित गपोड़े ही समझ रक्खे हैं। नहीं, नहीं, ऐसा समझना तुम लोगोंकी बिलकुल भूल है क्योंकि आज तक जो कुछ मैंने तुम लोगोंके सामने कहा है सो अपनी बुद्धिके अनुसार शास्त्रोंके आशयको समझ कर ही कहा है। इस लिये मेरे वचनोंमें अविश्वास करना योग्य नहीं है। अब मैं इस विषय पर सत शास्त्रोंके आशय को आप लोगोंके सामने प्रकाशित करता हूँ जिस से विदित हो जायगा कि सत युगादिकनमें मनुष्योंकी कितनी कितनी आयु हुआ करती है।

आप लोग भी अच्छी तरह से ध्यान देकर सुनिये जिससे कि, आप लोगों के चित विषय उत्पन्न हुई जो प्रबल शंका उसकी निबिर्त्ति हो कर मेरे कहे हुए वचनोंमें पूर्ण विश्वास उत्पन्न हो जाय।

श्रुति स्मृती ममै वाज्ञा॥

श्री वेद भगवान्की इस श्रुति में सर्वान्तर्यामी सर्व शक्ति मान् ईश्वर कहते हैं कि, श्रुति और स्मृती दोनों ही मेरी आज्ञा है अर्थात् हुक्म है। यहाँ पर यह शङ्का होती है कि दो श्रुतियों में परस्पर विरोध होवे या श्रुति और स्मृती में परस्पर विरोध होवे अर्थात् श्रुति अर्थ से बिपरीत स्मृति का मतलब निकलता होवे वहाँ पर किसका वचन ग्रहण करना और किसका बचन त्यागना चाहिये। इस शंका के निवार्णार्थ हमारे परम पूज्य महर्षियोंने यह निरणय किया है।

श्रुति द्वैधंतु यत्रस्यात् तत्र धर्मा वुभौ स्मृतौ ॥
विरोधत्वेन पेढ्यं स्यादसति ह्यनु मान के ॥

अर्थात जहाँ दो श्रुतियों में विरोध प्रतीत होवे वहां दोनों ही धर्म समझना चाहिये, और जहां श्रुति और स्मृति के वचनों में विरोध होवे वहाँ श्रुति वचनको ग्रहण करके स्मृती के वचनको त्याग देना चाहिये, क्यों कि श्रुति से विरुद्ध स्मृति के बचन मान्य नहीं होता और जब स्मृति और पुराणों के वचनोंमें परस्पर विरोध दीखे तो स्मृतीके बचनों को मान्य और पुराणों के वचनोंको अमान्य समझना चाहिए क्यों कि स्मृतीके विरुद्ध पुराणोंका वचन मानने योग्य नहीं होते। इन वाक्यों से यह सिद्ध होता है कि पुराणोंसे तो स्मृती बलिष्ठ है और स्मृती से श्रुति बलिष्ट है। अब सुनिये श्रुति और स्मृतीके तो बचन ऐसे कहीं भी देखने में नहीं आये कि सतयुग में मनुष्योंकी आयु एक लाख वा त्रेतायुगमें एक हजार वर्ष की होती थी। किन्तु वेदों वा उपनिसदोंकी श्रुतियां अथवा आर्य पुस्तकों से तो इनसे विरुद्ध चारों युगों में मनुष्यों की आयु एक सौ वर्षोंकी ही सिद्ध होती है। देखो सो वचन यह है।

पश्येम शरदः शत जीवेमशरदः शतम् [यजुः]
एधीन्धानास्त्वा शातिहिमा ऋधमे—
शतसंवत्सरं दीर्घमायुः ऋक्-शतायुर्वै पुरुषः कठ०
एति जीवन्त मानन्दो नरं वर्षशः तादपि।
वाल्मी-युद्ध कांड सीता वचन।

और ईशा वास्योपनिषद्में लिखा है कि मनुष्य कर्म कर्ता हुआ ही सौ वर्षजीनेकी इच्छा करै एसे कर्म करता हुआ मनुष्यको कर्मोंके बन्धनमें आना नहीं होता इससे दूसरा प्रकार बन्धन रूप कर्मसे छूटनेका नहीं है और कठ उपनिषद्में यमराज और नचिकेताका संवाद है वहां यमराज नचि केताके वैराग्यकी परीक्षा करते हुए कहते हैं कि तुम मेरे से आत्म विद्या मत पूछो और इस आत्म विद्या के बदले तेरेको सोलह १६ वरदान देता हूँ जो यह बहुत उत्तम हैं उनको ले कर प्रसन्न हो जावो वे सोलह वर यह हैं। सो बर्ष की आयु वाले—पुत्र, पौत्र, बहुत पशु, हस्ती, स्वर्ण, अश्व, मंडलाधिपत्य, चिरं जीवन, धन, अपनी स्थिर जीविका, चक्रवर्तिराज्य, मनुष्य लोक में काम प्राप्ति, सत्य, कामना, स्त्रियाँ, दासी, नृत्य, बादित्र, विषय, कुशल पुण्य यह १६ वर माँगे जो तुम्हारे आनन्दके हेतु हैं न कि आत्म विद्या इस पर महात्मा नचिकेतानें इन सोलह वरोंको तुच्छ समझ कर नहीं लिये किन्तु आत्म-विद्या को ही यमराज से मांगे। और संध्या करते समय भी द्विज प्रमाण से १०० वर्ष जीने की ही प्रार्थना करते। अब विचारना चाहिये कि वैदक ग्रंथों से तौ चारों युगों के लिये केवल १०० वर्ष की ही आयु सिद्ध होती है, तो फिर सतयुग में एक लक्ष त्रेतामें दश हजार वर्षकी आयु का परमाण होता तो वेदोंमें ऐसा वर्णन कदापि नहीं होता कि कर्म कर्ता हुवा पुरुष सौ वर्ष जीनेकी इच्छा करे।

फिर भी सुनिए यमराज ने नचकेता को सब से उत्तम वर समझ कर ही सौ वर्ष जीने वाला पुत्र पौत्र देना कहाथा। यदि उस समय हजारों वर्ष की आयु होती तौ क्या नचकेता इसे वर समझता और यमराज उसे देने के लिये कहता कदापि नहीं क्यों कि इसी समय में कोई मूर्ख भी ऐसा वेहुदा आशीर्वाद किसी को नहीं देता कि तुम्हारे दस वर्ष जीने बाला पुत्र हो। तो फिर जा यमराज जैसा विद्वान् और नचकेता जैसे महर्षि में ऐसी बार्ता जो कि उस समय मनुष्य की आयु हजारों वर्षों की होती तो होनी असम्भव थी इस से स्पष्ट ज्ञात होता है कि मनुष्योंकी आयु चारों युगों में सौ वर्ष की ही होती है। और युग युग के प्रति अलहदा २ वेद तो होता ही नहीं किन्तु चारों युगों में यही वेद रहता है जो इस समय उपस्थित है और सन्ध्या का मंत्र भी जो ईश्वर से १०० वर्ष जीने की प्रार्थना की जाती है चारों युगों में यही रहता है। इस लिये श्रुति प्रमाण से तौ हर समय सौ ही वर्ष की आयु सिद्ध होती है।

कदाचित कोई कहे कि चारों युगों में आयुका प्रमाण तो सौ ही वर्ष का था परन्तु अन्य युगों में योगाभ्यास करके आयु बढ़ा कर हजारों बरषों तक जीते रहे थे। सो बार्ता बन नहीं सक्ती क्यौं कि किसी समय में भी सारी सृष्टि के मनुष्य योगाभ्यासी नहीं हो सक्ते अलबता इतना फर्क तो हो सक्ता है कि इस समय कोटी मनुष्यों में एक या दो योगी होंगे और सतयुगादिकों में प्रती हजार एक मनुष्य योगी होता होगा। बस इतने ही समय का फेर हो सक्ता है यह नहीं हो सक्ता कि उस समय सब ही योगाभ्यासी थे। और यह भी समझ लीजिये कि योग कर के इतनी आयु भी नहीं बढ़ सक्ती कि एक सौ की जगह हजारों वर्ष जीते रह सकें। क्यों कि शास्त्रोंमें इन स्थूल शरीरों की स्थिती प्रारब्ध कर्मके ही आश्रितमानी

है। सो प्रारब्ध कर्म शरीरकी उत्पत्तिकाल में बन चुकता है और फिर योग करके घटबध नहीं सकता किन्तु प्रारब्ध तो भोग करके ही क्षीण होता है। और इनके क्षीण होनेसे शरीर भी नष्ट हो जाता है। इस लिए योग करके इतना आयुका बढ़ाना भी तो मानना योग्य नहीं है। जो कि एक सो वर्षका जुग है हजारों वर्ष तक जीता रहा। कदाचित कोई कहे कि सो वर्षकी आयुका तो एक सामान्य संकेत है अर्थात् इन से तो केवल पूरी आयु पानेका तात्पर्य है। यह नहीं कि चारों युगोंमें केवल सो ही वर्षकी आयु होती है। किन्तु आयु तो सतयुगमें एक लाख और त्रेतामें दस हजार वर्षकी ही होती है। ऐसा भी कहना ठीक नहीं क्यों कि मनुमें साफ लिखा है सो उसी व मुजिब। स्मृतिके बचन भी सुनिये

श्लोक—

अरोगाः सर्व सिद्धार्था श्चतुर्वर्ष शतायुष।
कृत त्रेतादिषु ह्येषामायुर्ह्रसति पादशः॥

प्रथम अध्या श्लोक ८३

अर्थ—सतयुगमें धर्मके प्रभाव से सब मनुष्य सम्पूर्ण सिद्धियों वाले और चारसो ४०० वर्षकी आयु वाले होते भये और यह आयु त्रेता, आदि युगोंमें एक एक पाद हीन होती गई जैसे त्रेतामें तीन सो (३००) द्वापरमें दोय सो (२००) कलियुगमें एक सो (१००) वर्षकी रह गई। इन मनुस्मृतिके बचन से ही हजारों वर्षकी आयुका मानना खंडन होता है और आप लोगोंने पुराणादिकोंमें हजारों वर्षकी आयु सुनि सो प्रथम तो श्रुति स्मृतिके विरुद्ध किसीका बचन माना नहीं जाता। इसके बारेमें

पहिले कह चुका हूँ। और दूसरी यह भी बात है कि शास्त्रोंका आशय भी तो गूढ़ होता है और तीसरे संख्याका तातपर्य भी कोई अन्य हो सक्ता है चोथे रोचक, भयानक और यथार्थ भेद करके शास्त्रों के बचन भी तीन प्रकारके होते हैं। सो विद्वान जानते ही हैं। इस लिये पुराणो क्त आयु के वारेमें, मैं कुछ नहीं कह सकता कि हजारों वर्षोंकी आयु किसतरह लिखी है। और जो श्रीरामचन्द्रजी महाराजका ११००० हजार इग्यारे वर्ष इस भूमि पर विराजना सुना जाता है। सो इसका भी कुछ ओर भी तात्पर्य निकलता होगा। क्योंकि रामायण में यह भी तो लिखा है कि सो योजनके समुद्र पर सेतु बाँधाथा। वही सेतु आज तक उपस्थित हैं। इस की इस समय सोमील तककी भी लम्बाई नहीं हैं जिसको कि उस समय सो योजन अर्थात चारसो कोष कहते थे। जिस तरह कोषों की माप में उस समय से इस समयमें फर्क है उसी तरह से वर्षोंका भी कोई अन्य ही संकेत होगा।

अथवा, इस समय वैबस्वत मनवन्तरमें अठाईस वीं चौकड़ी वर्त-मान है। और हरेक त्रेतायुग में श्रीरामचन्द्रजीका अवतार हुआ करते हैं तो इस हिसाब से इस मनवन्तर में अठाईस वार महाराजके इस भूमी पर प्रादुर भाव हो चुका उन सर्व अठाईसो बार की समय का इग्यारे हजार वर्ष समझा जावे तो एक २ वार के अवतार में ३९३ वर्ष के समीप महाराज का इस भूमंडल पर विराजना पाया जाताहै यदि ऐसा ही है तो मनूका प्रमाण ही ठीक मिलता है।

कदाचित कोई कहे कि मनू से ता त्रेता युग में ३०० वर्ष की आयुका प्रमाण मिलता है। और महाराज ३९३ वर्ष अर्थात् ९३ वर्ष अधिक किस प्रकार रह सके।

यह भी शंका ठीक नहीं क्योंकि पूरी आयु तो कोई नहीं पा

सक्के जैसे वहुत से कम, आयु भोगते हैं तसै ही कोई ज्यादा भी भोग सक्के हैं। देखो इस समय कलियुग में सो वर्ष की आयु से अधिक नहीं माना जाता परन्तु देश करके वा व्यक्ती भेद से कोई २ अधिक भी जी सक्के हैं।

जैसे इसी देश में श्रीकृष्णजी भगवती संवत् १४४४ में जन्म लेकर संवत् १५९५ में परलोक पधारीं अर्थात् १५१ वर्ष तक इस भूमिपर स्थूल शरीर से विराजमान रहीं। जिसकी प्रतिमा बीकानेर से दक्षिण पूर्व, कोस के गांव देशनोक में उपस्थित है, बड़े मान्य के साथ समय भी पूजी जा रही है। और तिव्बतादि देशों में इस समय भी १५० वर्ष तक के मनुष्य जीवित सुने जाते हैं। इस लिये श्रीरामचन्द्रजी भी प्रमाणित आयु से ९३ वर्ष अधिक बिराजे रहे तो कोई विप्रीत नहीं है।

अब विचारिये कि जब शास्त्रों द्वारा चारसौ वर्ष से अधिक आयु का होना किसी युग में सिद्ध न हुआ तो हमारे माने हुए नाटिक में जो कि पाँच २ सो वर्ष से पृथ्वियों को बदलत हुए सारी नाटिक होने में आपके कहे हुए दोष कदापि नही आ सक्ता इस लिए हमारे कथन को कपोल कल्पित समझना आपकी सभ्यता से बाहिर है।

प्र० महाराज आपने इस मृत्युलोकमें आठहजार छसौ चालीस (८६४०) पृथ्वीयां इसी पृथ्वीके सदृश जिस पर कि हम लोग इस समय निवास कर रहे हैं माने हैं सो किस प्रकारसे मानी है इसका भी कोई हिसाब ही होवेगा सो हिसाब भी आप हम लोगों को अच्छी तरह से समझा दीजिए जैसा कि पांच पांच सौ वर्ष से सारी नाटक के होनेका हिसाब आप अभी थोड़ी देर पहिले हमको समझा चुके है।

उ०—सभ्यगणो इस भूलोक में आठहजार छसौ चालीस

(८६४०) पृथ्वीयांका होना हिसाब द्वारा इस प्रकार सिद्ध होता है कि एक चौकड़ीमें मनुष्योंके तेतालीशलाख बीस हजार (४३, २००००) वर्ष होता है और पांच पांच सौ वर्षका एक २ नाटक होता है इस लिये इनको पांच सौ का भाग निकालना चाहिये। जब तेतालीशि लाख बीस हजार (४३, २००००) वर्षोंको पांच सौ का भाग निकाला तो आठहजार छुबसौ चालीस (८६४०) ही मिलेगी बस इतनी ही पृथ्वीयां है क्योंकि एक चौकड़ी के परयात ही सारी पृथ्वी पर सारी समय आजाया करती है अर्थात् एक चौकड़ीके बाद फिर इसी पृथ्वी पर यही समय आजायगा जिसमें की तुम्हारे इन्हीं महाराजाधिराज के कर कमलन से श्रीजयन्ती महोत्सव का होना सत पश्चात् तुम्हारा हमारा भी समागम होना।

यदि आठ हजार छ सौ चालीस (८६४०) से कम बेशी पृथ्वीयों को माना जाय तो एक चौकड़ी के बाद सारी समय का आना भी ठीक नहीं मिलता और एक चौकड़ी के पश्चात् सारी समयका आना नहीं मानना शास्त्रों से विरुद्ध है इस लिये आठहजार छुबसौ चालीस (८६४०) ही पृथ्वीयाँ इस भूलोक (मृत्युलोक) में मानने योग्य है।

प्र०—महाराज इस प्रश्नका उत्तर हम खुब समझ गये परन्तु एक और भी बात है जिसको हम अभी तक नहीं समझे सो भी आप कृपा करके समझा दीजिए।

आपने कहा था कि हर समय तीन हजार चारसौ छपन (३४. ५६ पृथ्वीया पर तो सतयुग और दो हजार पांच सौ बाणमें (२५९२) पृथ्वीयां पर त्रेतायुग, और एक हजार सातसौअठाईश (१७२८) पृथ्वीयां पर द्वापरयुग और आठसौ चौसठ (८६४) पृथ्वीयां पर कलयुग रहा करते हैं।

महाराज! इनका कौनसा हिसाब है सो अभी बतलाइये क्यों कि आप जैसे महत्पुरुषोंके समागम होने से ही गूढ़ विषय समझमें आया करते हैं।

उत्तर—सुनो भाईयो यह तो ऐसी कोई गूढ़वार्ता नहीं है जो तुम्हारी समझमें न आसके क्यों कि शास्त्रोंमें सतयुगका प्रमाण सतरह लाख अठाईस हजार (१७२८०००) वर्षोंका कहा है जिस को पांचसोका भाग निकालने से तीन हजार चारसो छप्पन (३४५६) होता है अर्थात् सतयुगके सर्व वर्षोंमें पांच पांचसो वर्षोंका एक एक भाग किया जाय तो सतयुगका कुल तीन हजार चारसो छप्पन ही भाग होवेगा सोई एक २ भाग एक २ पृथ्वी पर उपस्थित होने से ३४५६ ही पृथ्वीयों पर सतयुगका होना सिद्ध होता है। इसी तरह त्रेता युगका प्रमाण बारह लाख छानमें हजार (१२९६०००) वर्षोंका है।

उनको पांचसो का भाग निकालने से दो हजार पांचसो बानमें (२५९२) ही मिलेगा बस इन दो हजार पांचसो बानमे (२५९२) पृथ्वीयों पर त्रेता युग हर समय रहा करता है। द्वापर युगका प्रमाण आठ लाख चौसठ हजार (८६४०००) वर्षोंका है जिस को पांचसोका भाग निकालनेसे एक हजार सातसो अट्ठाईस (१७२८) ही मिलेगा इससे आप समझ सक्ते हैं कि एक हजार सातसो अठाइस पृथ्वियों पर द्वापर और चार लाख वत्तीस हजार (४३२०००) वर्षोंका कलियुगका प्रमाण है इनको पांचसोका भाग निकालने से आठसो चौसठ (८६४) ही मिलेगा इसलिये आठसो चौसठ पृथ्वीयों पर ही कलियुगका रहना सिद्ध होता है। इस तरह हिसाबकी राह से इतनी २ पृथ्वियों पर अमुक २ युगका हर समय रहना साबित होता है इन सर्व पृथ्वियोंको मिलानेसे वही आठ हजार छःसो चा-

कोस (८६४०) ही होवेगा जितनीकी मैं इस मृत्युलोकमें कल्पना कर चुका हूँ।

यह सब पृथ्वियां आकाशमें गोल नारंगीके समान है और जलों के सूक्ष्म अणूवोंसे मिली हुई वायुके आधार पर ठहरी हुई हैं और एक चक्कर प्रति दिन खाया करती है जिससे कि दिन रात हुआ करता है। नक्षत्रादिक भी चलते रहते हैं परन्तु पश्चिम से पूरबकी ओर जाते हैं और पूरबसे पश्चिमको जाते हुए दृष्टि पड़ते हैं। सो पृथ्वीके घुमाव से ही ऐसा प्रतीत होता है जैसे कि रेलगाड़ी या जहाजमें चढ़ने वाले यात्रियोंको दूरके मकान वा वृक्षादि चलते हुये नजर आते हैं वास्तवमें वे नहीं चलते तैसे ही पृथ्वीके घुमने करके सूर्यादि चलते हुये नजर आते हैं उस तरह कदापि नहीं चलते।

प्रश्न—महाराज पहले तो आपने पृथ्वियोंको अचल कहा था और युग रूपी कालको वा कालके आश्रित सब जीवोंको चल कहा था अब कहते हो कि पृथ्वीयां भी चलती हैं और एक चक्कर हमेशा खाया करती है। इस लिये आपके वचनोंमें भी पूर्वा पर विरोध आता है।

उत्तर—हाँ ठीक है परन्तु पहिले हमने केवल सर्व पृथ्वीयोंके चक्करको ही तो अचल कहा था भिन्न भिन्न पृथ्वीयोंको तो अचल नहीं कहा था। इस लिये पूर्वा पर विरोध मेरे वचनोंमें नहीं आता है।

और यदि सर्व पृथ्वीयोंके चक्करको ही घूमना माना जाय और सतयुगादि कालरूप चक्कर और कालके आश्रित जीवोंको अचल माना जाय तो भी मेरे माने हुवे नाटकमें कोई तरहका फरक नहीं आ सकता इस वास्ते ऐसा माननेमें भी मुझे कोई उज्र नहीं है। क्योंकि ज्योतिष शास्त्रके जानने वाले कई विद्वान

सो एक सूर्य्यको अचल मान कर नक्षत्रादि सहित पृथ्वीको चल मानते हैं और कई विद्वान एक पृथ्वीको ही अचल मानते हुये सूर्य को नक्षत्रादि सहित चल मानते हैं। इन दोनोंमें से चाहे जिस एकको चल और दूसरेको अचल मानने से गणितमें किसी प्रकारका फर्क नहीं आता। इस लिये ऐसा भी मान सक्ते हैं कि चारों युग रुपी काल और कालके आश्रित सर्व जीव तो अचल है और ८६४० पृथ्वीयोंका एक गोल चक्कर इस तरह घूमा करते हैं कि पांच सो वर्षोंमें एक पृथ्वीकी जगह दूसरी पृथ्वी आजाया करती है। अर्थात् (४३२००००) वर्षोंमें इस चक्करका एक गुल्का पूरा होता है। जैसे ७७८७ नम्बरकी जो यह पृथ्वी है इसकी जगह पांच सो वर्षोंमें ७७८९ नम्बरकी पृथ्वी आ जायगी और आपसमें इन सब पृथ्वीयोंमें जितना बीच है उतना ही बीच हर समय बना रहेगा। ऐसा माना जाय तो भी बहुत ठीक है। क्योंकि मुख्य पांच सो वर्षमें अह्मदादिकोंका ७७८६ नम्बरकी पृथ्वीके साथ सम्बन्ध होना चाहिये। जिसमें चाहे हम लोग कालके साथ चल कर उस पृथ्वी तक पहुँचे चाहे वो पृथ्वी अपने चक्करके आश्रय से चलती हुई हमारे पास पहुँचे। सज्जन गणों इतना कह कर महात्माने निम्न लिखित सर्व पृथ्वीके चक्करका चारों युगादिकोंके सहित एक नकशा खींच कर सर्व सभ्यगणोंको अच्छी तरह से समझा दिया ततपश्चात महात्मा कहने लगे प्रिय जनो इस समय रात्रि अधिक आ चुकी है इस लिये अभी तो आप लोग अपने अपने घरको जाइये मैं भी आराम करना चाहता हूं और फिर भी कुछ पूछनेकी इच्छा हो तो कल उसी समय चले आना जिस वक्त आज तुम लोग आये थे। मैं तुम्हारे संशयोंका निवारण भली प्रकार कर दूंगा कि जो तुम्हारे हृदयमें उपस्थित है।

इतना सुनते ही सभ्यगणोंने प्रसन्नता पूर्वक महाराजको नमस्कार करते हुये दूसरे दिन आनेकी प्रतिज्ञा करके प्रस्थान किया।

इति श्रीअद्भुत विचार ग्रंथे
द्वितीय भाग समाप्तः।
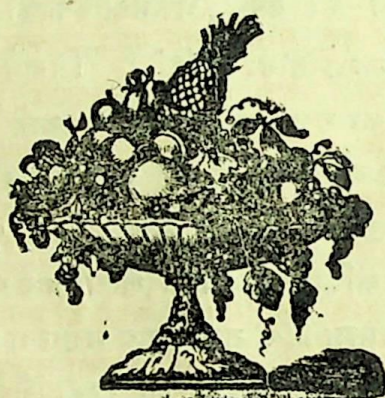
अथ अद्भुत विचार ग्रंथे

तृतीय भाग प्रारम्भ ।

तीसरे दिन फिर भी सायंकाल करीब ७॥ बजेके सब सभ्यगण एकत्रित होकर महात्माके आसन पर आय नमस्कारादि करके इस प्रकार प्रश्न करने लगे महाराज इस ७७८७ सात हजार सात सौ सित्यासी नम्बरकी प्रथ्वीके आश्रित रहने वाले अस्मदादिकनका ठीक पांच सो वर्षोंमें ७७८९ सात हजार सात सो छियासी नम्बर की पृथ्वी पर जन्म लेना आपने माना है । परन्तु इसमें आपकी भूल है क्योंकि जैसे कोई मन ही के लड्डू खाया करते हैं उन लड्डुओंमें मीठेकी कमी कभी नहीं करते तैसे ही आपने भी इन सर्व पृथ्वीयों पर मन घड़ित नम्बर लगाया है जिसमें उलटा पन नहीं आने देना चाहिये था । अर्थात ७७८७ नम्बरकी पृथ्वीके जीवोंका पांच सो वर्षोंमें ७७८८ नम्बरकी पृथ्वी पर जन्म मानना वाजिब था लेकिन आपने इनके विरुद्ध ७७८६ नम्बरकी पृथ्वी पर जन्मना किस वास्ते माना ।

उत्तर—वाहजी वाह यह तुम क्या कहते हो क्या आज तुम लोगोंने भंग तो न पी ली है क्योंकि इस देश निवासी भंगका बहुत ही आदर किया करते हैं इसीके प्रताप से ही तो विदेशियोंके मुँहके सामने ताकते रहते हैं फिर भी विदेशियोंको सभ्य और अपनेको असभ्य समझते हुवे अपनी संतान और अपने देशकी उन्नतिका कोई भी उपाय नहीं सोचते, सोचे कौन धनाढ्योंको तो ऐश आराम से

ही फुरसत नहीं मिलती और गरीब विचारा कर ही क्या सकता है कि जिसका पेट पूरा नहीं भरता खैर इन झगड़ोंको जाने दीजिये परन्तु तुमने हमारे लगाये हुवे पृथ्वीयों पर नम्बरोंको मन घड़ित कैसे समझा, क्या कोई विद्वान इन पृथ्वीयों पर मन घड़ित नम्बर लगा सक्ता है! नहीं, नहीं, कदापि नहीं; और यदि कोई मन घड़ित नम्बर लगा भी दे तो क्या गणितको जानने वाले विद्वान उनका उपहास न करेंगे? किन्तु करेंहींगे इस लिये मेरे ही लगाये हुए नम्बर को मन घड़ित समझना तुम्हारी नादानीके सिवाय और क्या है।

प्रिय जनों! गणित द्वारा जिस प्रकार नम्बरोंका लगाना चाहिये था उसी तरह नम्बर लगाया गया है जभी तो उलटा नम्बर आया है।

हां एक रीति से तो गणित द्वारा भी सीधा नम्बर आ सक्ता था। परन्तु उस रीति से नम्बर लगानेमें शास्त्रों से विरुद्ध चारों युगोंकी गणना भी उलटी करनी पड़ती अर्थात् कलियुगके अन्तमें एकका नम्बर लगा कर उलटी रीति से चलते हुये कलियुगके आदिमें ८६४ का नम्बर लगना फिर द्वापरके अन्तमें ८६५ और द्वापरके आदिमें २५९२ का नम्बर लगता है इसी तरह से त्रेतायुग वा सतयुगके नम्बर भी समझ लेना।

यदि मैं भी इसी प्रकारसे नम्बरोंको लगाता तो इस पृथ्वी पर ७७८७. की जगह ८५३. आता फिर इस पृथ्वीके जीवोंका ठीक पांच सो वर्ष पश्चात ८५४. नम्बरकी पृथ्वी पर जन्मना मान सकते थे इस प्रकार सीधा नम्बर भी आ जाता परन्तु शास्त्रोने सतयुगके आदि से ले कर ही सर्व युगोंकी गणना की है उसीके अनुसार हमने भी पृथ्वीयों पर नम्बर लगाया है, अर्थात् इस समय जिस पृथ्वी पर

सत्युगका आदि है उसी पृथ्वी पर एकका नम्बर और जिस पृथ्वी पर कलियुगका अन्त है उसी पृथ्वी पर ८६४० का नम्बर लगाया है। लेकिन गणितको जानने वाले तो लगाये हुवे नम्बरोंको मन घडित कदापि नहीं कहेंगे जैसा कि तुम लोगोंने समझ रखा है।

पाठक गणों जब इस प्रकार महात्माके वचन सुन कर सभ्य जन लज्जित होते हुवे हाथ जोड़ कर क्षमाकी प्रार्थना करके परस्पर कहने लगे कि स्वामीजी गणितके हिसाबको भी खूब जानते हैं देखो पृथ्वीयों पर लगे हुवे नम्बरोंको कैसे स्पष्ट रीती से समझा दीया और पहले भी बहुत से प्रश्नोंका उत्तर हिसाब से ही समझा चुके थे अब हम लोगोंको पाहिले ऐसे प्रश्न करने चाहिये कि जिसका उत्तर हिसाब द्वारा ही दीया जाय क्योंकि तरह २के हिसाबोंको समझ लेना हम वैश्योंका मुख्य कर्तव्य है ऐसा विचार कर यह प्रश्न करने लगे।

प्रश्न—महाराज आपने पहिले कहा कि इस कल्पकी सृष्टीमें कुल ८४००००० चौरासी लाख वार श्रीजयन्ती महोत्सव हो चुकेंगे अब हम यह जानना चाहते हैं कि यह महोत्सव भूत कालमें कितनी वार तो हो चुका है और भविष्यत कालमें कितनी वार फिर होने वाले हैं कृपया इसका हिसाब भी आप हम लोगोंको अच्छी तरह समझा दीजिये क्योंकि शास्त्रोंमें बहुत सी जगह ऐसा लेख मिलता है कि श्रेष्ठ पुरुषोंके साथ समागम होने से ही पुरुष संशय रहित हुवा करते हैं इस लिये हमारा यह भी संशय दूर कीजिये।

उत्तर—प्रिय जनों! इस प्रश्नका उत्तर तो आप लोग स्वयं ही गणित द्वारा समझ सक्ते है कि सृष्टिकी आदि से लेकर आज पर्यन्त इतनी वार तो यह महोत्सव हो चुके है और आज से लेकर सृष्टिके अन्त तककी समयमें इतनी वार फिर होने वाले हैं

क्योंकि सन्ध्या करते समय द्विज इस संकल्पका नित्य प्रति उच्चारण किया करते हैं जिस से देश और कालका हर समय ज्ञात रहता है सो संकल्प यह है-यथा—

ओं अद्येत्यादि ब्रह्मणो द्वितीयप्रहरार्द्धे श्रीश्वेत बराह कल्पे जंबू द्वीपे भरत खंडे आर्या वर्तांतर्गत ब्रह्मावर्तैक देशे कुमारीका पीठे वृहस्पति नद्ये अष्टा विंशतित्तमे कलियुगे कलि प्रथम चरणे श्रीमद्दा-विष्णो बुद्धावतारे शाकेंद्र शालीमानभूपाले श्रीमन्नृपति विक्रमा दित्यराज्यात सम्व्रत देकोन विंशति तमेशत मिते नव षष्टी तमोन्धिकेत्यादि ।

इस संकल्प से इतना तो सिद्ध हो ही चुकता है कि इस कल्पके आदिको एक अरब पचानवे करोड़ अठावन लाख पिच्यासी हजार तेरह वर्ष १,९५,५८, ८५,०१३) आज विक्रम सम्वत् १९६९ में हो चुके हैं इस संकल्पको सनातन धर्मावलम्बी आर्यावृत्तके द्विज लड़के भी जानते हैं इस लिये धन्य है इस सनातन धर्मको की जो वेद विहित है।

अब सुनीये इन (१९५५८८५०१३) वर्षोंमें से बारह करोड़ वर्ष वह निकाल देना चाहिये जो सृष्टीकी रचना करनेमें लग चुका था पस इनको निकालने से शेष (१८३५८८५०१३) ही रहेंगे इसको पांच सो का भाग निकालना चाहिये क्योंकि पांच २ सो वर्ष से ही यह महोत्सव अर्थात् सांगी खेल हुवा करता है। अब १८३५८८ ५०१३ को पांच सो का भाग निकालने से ३६७१७७० ही मिलता है पस समझ जाईये कि छत्तीसलाख इकत्तर हजार सातसो सत्तर बार

तो गत समयमें यह जयन्ती महोत्सव हो चुका है और २३६४११ ४९९७ वर्ष इस सृष्टीका बाकी है क्योंकि ४३२०००००० में से १९५५८८५०१३ निकालने से इतना ही रहता है जिनको पांच सो का भाग निकालने से सैतालीस लाख अठाइस हजार दो सो तीस (४७२८२३०) मिलता है तो समझ लो कि सैतालीसे लाख अठाइस हजार दो सो तीस बार ही इस कल्पकी सृष्टीमें यही महोत्सव फिर होने वाला है। इन गत और आगामी महोत्सवोंका मिलान करने से ठीक चौरासी लाख ही मिलता है। सभ्यगणों यह जो श्रीजयन्ती महोत्सवके हो चुके वा होने वालोंका हिसाब तुम लोगों को बतलाया गया है सो सूर्य सिद्धान्तादि जिस से कि सालदर साल पत्रे निकाले जाते हैं उन ज्योतिषके ग्रन्थों से ही कल्पके आदिको मान कर वतलाया है परन्तु हिसाब से विचारा जाय तो कल्पके आदिको एक अरब छानवे करोड चौरानवें लाख तेरानमें हजार तेरह (१९६९४९३०१३) वर्ष हो चुके हैं। क्यों कि चार अरब बतीस करोड़ (४३२००००००) वर्षोंका ब्रह्माका एक दिन होता है जिनमें चौदह मन्वान्तर हुवा करते हैं। तो पाया गया कि एक मन्वान्तरका तीस करोड़ पिच्यासी लाख इक-त्तर हजार चारसो अठाइस (३०८५७१४२८)५महीनोंके समीप होता है। इस समय सातवें मनवान्तरका अठाइसवा कलियुग प्रचलित है इसलिये छव मनवान्तरोंके भोग चुकने से (१८५१४२८५७१) वर्ष पांच महीने तो व्यतीत हो चुके। अब रहा प्रचलित वैवेस्वत मनवान्तर जिसके भी इस समय ग्यारह करोड़ अस्सी लाख चौसठ हजार चारसो साढा ब्यालीस (११८०६४४४२॥) वर्षोंके समीप हुवा है। क्योंकि ६ मनूवोंके भोग चुकनेमें (४२८) चौकडी व एक सतयुग और त्रेतायुगके सात लाख चालीस हजार

पांच सो साढे इकत्तर वर्ष बीत चुके थे इस लिये इन सप्तम मनुका ग्यारह किरोड छयासठ लाख चालीस हजार वर्ष तो कुल सताइस (२७) चौकड़ीके होते हैं और पांच लाख पचवन हजार चार सो साढे अठाइस (५५५४२८॥) वर्ष त्रेतायुगके बाकी रहे थे, और आठ लाख चौसठ हजार (८६४०००) वर्ष द्वापरके व पांच हजार तेरह (५०१३)वर्ष इस बर्त्तमान कलियुगके इन सबोंको मिलाने से वही ग्यारह करोड़ अस्सी लाख चौसठ हजार चारसो साढ़ा ब्यालिस वर्ष ही इस मनुके आदिका होता है और भूत ६ मनवों के बर्षोंको इसमें मिलाने से वही एक अरब छियानबें करोड़ चौरानबें लाख तेरानबें हजार तेरह (१९६९४९३०१३) वर्ष इस कल्पके ब्यतीत हो चुके जिसको पांचसोका भाग निकालने से छतीस लाख अठानमें हजार नो सो छियासी (३६९८९८६) ही मिलता है। सो समझलो कि इतनी वार तो यही महोत्सव भूत कालमें हो चुका और सैतालीस लाख एक हजार चौदह (४७०१०१४) महोत्सव भविष्यत कालमें होने वाले वाकी हैं। पाठक सज्जनों जब इस प्रकार से सभ्यजनोंको महात्मा पहिले हो चुके और भविष्यात में होने वाले श्रीजयन्ती महोत्सवोंका हिसाब समझा कर फिर कहने लगे। प्रिय जनो! जिस प्रकार जितने जयन्ती महोत्सव भूतकाल में हो चुके हैं उसी प्रकार उतने ही आप लोगोंके जन्म भी भूतकाल में हो चुके हैं अर्थात् जयन्ती महोत्सवके साथ साथ तुम लोगोंके जन्म भी हुवा करते हैं और भविष्यात् कालमें जितने महोत्सव बाकी हैं उतने ही जन्म आप लोगोंके भी होने वाले हैं इन सब चौरासी लाख जन्मोंमें एक ही से खेल करते आये हैं वा करते रहेंगे जैसा कि इस जन्ममें इस शरीर करके कर रहे हैं। इस प्रकार प्रश्नका उत्तर पा कर सभ्यगण बहुत ही प्रसन्न हुये फिर हाथ जोड़ कर यह प्रश्न करते भये।

प्रश्नः—महाराज इस संसारको ईश्वरके देखने लायक परमात्माके रचे हुए एक प्रकारका नाटकके खेल रूप से आपने वर्णन किया है परन्तु जैसे हम लोगोंके देखने लायक नाटकका एक खेल चार या पांच घन्टेका हुवा करता है तैसे ही ईश्वर है दृष्टा जिसका ऐसे जगत रूपी नाटकका एक खेल कितने समय तकका हुआ करता है यह भी कृपा करके बतलाईये।

उत्तर—सुनो भाइयों इस परमेश्वरी नाटकका एक खेल मनुष्योंके पांच सो वर्षों तकके समयका हुआ करता है। क्योंकि पांच पांच सो वर्षोंका ही एक २ समय हुआ करता है। इस वास्ते एक चौकड़ी अर्थात् तेतालीस लाख वीस हजार वर्षोंमें ८६५० समय हिसावकी रूह से सिद्ध होता है और इस भूलोकमें भी इतनी पृथ्वीयां हैं इस वास्ते एक एक पृथ्वी पर एक २ नूतन नूतन समय उपस्थित है और समयके ही आधीन नाटकका खेल होता है इस वास्ते हर एक खेल पांच सो वर्षकी समयका ही मानने योग्य है।

प्रश्न—महाराज इन परमेश्वरके रचे नाटकोंके खेल सर्व कितने प्रकारके हैं और किस २ प्रकार रीती से हुवा करते हैं। सो सर्व कृपा करके सुनाइये।

उत्तर—प्रियजनों जगदीश्वरके रचे हुए असंख्य ब्रह्मांड है इस से कहा जाता है कि (प्रभू पूर्ण ब्रह्म अखंडा, जाके रोम कोटि ब्रमंडा)

अर्थः—प्रभू अखंड पूरण ब्रह्म है जिनोंके रोम रोम प्रति कोटि २ ब्रमांड उपस्थित हैं। प्रिय जनों! इन असंख्य ब्रमांडोमें ब्रह्मा, विष्णु शिव आदिक देव भी असंख्य ही है इसलिये सृष्टियोंका कोई पारावार नहीं है इन ब्रमाडोंके बीच एक यह भी ब्रमांड है जिसमें चतुरदश लोक है इस वास्ते असंख्य ब्रमांडोंके असंख्य लोकोंकी असंख्य

सृष्टियोंके होने से नाटकोंका खेल भी असंख्य ही है इसकी संख्या कोई भी लगा नहीं सक्ता परन्तु इन चतुरदश लोकोंके भीतर ही यह एक भूलोक है इन भूलोंकमें आठ हजार छय सो चालीस पृथ्वियोंके होने से या सर्व पृथ्वीयों पर एक ही कालमें एक २ नूतन २ नाटकी खेलके होने से ८६४० प्रकारके ही नाटकके खेल मानने योग्य है। यह सर्व खेल सृष्टिके आदिमें शुरु हो कर अन्त पर्यन्त इस प्रकार से होते रहते हैं। सृष्टिके आदिमें एक एक पृथ्वी पर एक २ नूतन २ नाटकी खेल एक ही साथ शुरु हो जाते हैं फिर पांच सौ वर्ष पश्चात् इन सर्व खेलोंकी इस प्रकार बदला सदली होती है कि नम्बर दो (२) की पृथ्वी वाला खेल नम्बर एक (१) की पृथ्वी पर और नम्बर (१) एक की पृथ्वीका खेल नम्बर (८६४०) की पृथ्वी पर शुरु से आखिर तक पांच सौ वर्ष पर्यन्त होता रहता है इस प्रकार सर्वत्र समझ लेना। पांच २ सौ वर्षोंसे नाटकी खेलोंकी बदला सदली इस प्रकार होनेके हिसाब से एक चौकड़ी तककी समयमें एक २ पृथ्वी पर एक २ वार सर्व खेल हो चुके हैं ।

इस लिये एक भूलोंकमें पृथ्वी भरकी सृष्टिका एक ही नाटक मानने से आठ हजार छयसौ चालीस नाटक सिद्ध होता है और यदि देस २ वा ग्राम २ अथवा घर २ प्रति अलहदा २ नाटक माना जाय तो भूलोंकको छोड़ कर एक इसी पृथ्वी पर असंख्य नाटक मान सक्ते हैं इस वास्ते सर्व कितने प्रकारके नाटक हैं इसका उत्तर तो सिवाय ईश्वरके और कोई भी नहीं दे सक्ता परन्तु फकं एक ही भूलोंकमें एक २ पृथ्वी पर एक २ नाटक मान करके ही आठ हजार छय सौ चालीस नाटक है और इस प्रकार अन्यो-अन्य पृथ्वीयों पर बदल सदल होते रहते है सो सब आप लोगोंको बतला चुके अब और इच्छा हो सो पूछिये ।

प्रश्न—महाराज एक ही कालमें सर्व पृथ्वीयों पर भिन्न २ समय और समयानुसार भिन्न २ नाटकका होना आपने कहा है सो तो हम समझ ही चुके परन्तु, यदि एक कालमें सर्व पृथ्वीयों पर एक ही समय माना जाय अर्थात् इस समय सर्व पृथ्वीयों पर यही एक समय जो कि कलियुगके आदिका है मानी जाय तो इसमें कोनसा दोस आता है।

उत्तर—सुनो भाईयों यदि इस कालमें सर्व पृथ्वीयों पर एक ही समय अर्थात् फक्त कलियुगका आदि ही मानना विचार द्वारा सास्तरों से विरुद्ध मालुम होता है क्योंकि शास्त्रकारोंने परमेश्वरमें निरअतशय भोग वा सुख माना है। जो सुख एक दुसरेकी अपेक्षा से इतने गुन न्युनाधिक है ऐसा बतलाया जाता है सो सुख अतश्यता दोस करके ग्रसित कहा जाता है और जो सुख सर्वकी अपेक्षा से अनन्त गुना अधिक कहा जाता है वही सुख निरअतशय कहलाता है जैसे कि यजुर वेदकी तैत्तरीयोपनिषदकी श्रुतियां कहती हैं। जैसे हजार पति से लख पतिको सुख अधिक है और लख पती से करोड़ पतीको सुख अधिक है और जिनकी आज्ञा इन लोगों पर चलती है सो इन से भी अधिक सुखी समझा जाता है क्योंकि धनाढयोंमें भी हुकूमतकी तृष्णा पाई जाती है तैसे ही युवा अवस्था वाला होवे और बलिष्ठ निरोग सुन्दर रूप वाले कला कौशल्यमें निपुण बुद्धि वाले पण्डित और धन धान्य सम्पन्न ऐसे निस्कंटक चक्र वर्ति राजाको बुद्धिमान लोग मनुष्य सुखके अंतवाला कहते हैं। लेकिन ऐसे भूपति से भी मानव गंधर्वोंको सतगुण सुख अधिक है और मानव गंधर्वों से देव गंधर्वोंका शत गुण सुख अधिक है। देव गंधर्वों से पितरोंको सौगुना सुख अधिक है इन से अजान देवोंको और अजान देवों से कर्म देवोंको सोगुना

सुख अधिक है कर्म देवों से मुख्य देवोंको सौगुन सुख अधिक है और मुख्य देवों से भी देवराज इन्द्रको सौगुन सुख अधिक है देवराज से भी देव गुरु बृहस्पतिको सौगुन सुख अधिक है बृहस्पति से भी प्रजापतिको सौगुन सुख अधिक है प्रजापति से ब्रह्मा जीको सौगुना सुख अधिक कहा है इस रीती से न्यूनाधिक सुखों की व्यवस्था कही है सो यह सर्व सुख अपेक्षित होने से अतश्यता दोष करके ग्रसित ही जानिये और परमेश्वरको इन सबोंकी अपेक्षा कितना गुन सुख अधिक है इसकी कोई संख्या नहीं है इस वास्ते निरअतश्य आनन्दकी प्राप्ती एक परमेश्वरमें ही घटती है अन्योंमें नहीं इस लिये परमेश्वरको सर्व कालमें सर्व भोगोंकी प्राप्ती है ऐसा शास्त्रोंमें स्पष्ट लेख पाया जाता है।

जब सर्व पृथ्वीयों पर एक यही समय अर्थात् कलियुगका आदि ही माना जाय तो पूर्वोक्त शास्त्रोंके वचनोंमें दोस आवेगा। क्यों कि जब सब पृथ्वीयों पर इसी समय एक कलियुग ही माना जाय तो परमेश्वरको इस समय अन्य युगोंकी सर्व समयके तमाम खेलों से वंचित ही मानना पड़ेगा सो ऐसा मानना ठीक नहीं। किन्तु इसी एक ही कालमें सब पृथ्वीयों पर चारों युगोंकी सब समय और समयानुसार सर्व खेलोंकी उपस्थित होना ही मानने योग्य है।

क्योंकि ऐसा मानने से ही ईश्वरके वास्ते सर्व कालमें सर्व भोगों की प्राप्तीको कहने वाले शास्त्र चरितार्थ होते हैं और सर्वशक्तिमान व सर्वज्ञ होने से ईश्वर एक ही कालमें सर्व पृथ्वीयोंके सर्व खेलों को देख रहे हैं और सर्व नाटकोंके खिलाड़ी जीवोंके सुख दुख वा कर्त्तव्य आदिकोंको भी एक ही साथ अनुभव कर रहे हैं। बोलीको सुन रहे हैं और पाप पुण्यको भी समझ रहे हैं इस लिये सब कोई मानते हैं कि चाहे जहां छिप कर पापादि बुरे कर्म

करें परन्तु वह कभी परमेश्वर से अविदित नहीं रहते इस प्रकारके विचार द्वारा सर्व पृथ्वीयों पर एक ही कालमें चारों युगोंकी नूतन नूतन समयका होना ही सिद्ध होता है और भी सुनिये सर्व जीवोंको कर्मोंके आधीन ही देस मिलता है अर्थात् नगर वा ग्रामादिकोंमें जन्म होना और कर्मोंके अधीन ही काल मिलता है अर्थात् सत्युगादि चारों युगोंमें से अमुक युगकी अमुक समयमें जन्म हो और कर्म्मोंके अनुसार ही मनुष्य वा पशु पक्षी आदिका शरीर मिलता है और न्यूनाधिक वा दुख सुखादि भोग भी कर्मोंके अनुसार ही मिलता है। इस वार्ताको सर्व आस्तिक विद्वान मानते हैं। अब सर्व पृथ्वीयों पर एक काल में ही एक ही समय माननी अर्थात् इस समय सर्व जगह कलियुगका आदि ही माना जाय तो सत्युग आदि चारों युगों की अन्योअन्य समयमें जन्मने लायक कर्मों वाले जीवोंकी इस समय सतयुगादिकनकी समयोंके अभाव से जन्म रहित ही मानना पड़ेगा और इस समयमें जन्मने लायक कर्मों वाले जीवों को अन्य सर्व समयोंमें जन्म हीन मानना पड़ेगा। जब ऐसा ही माना जाय तो एक चौकड़ी तककी समयमें एक ही बार जीवों का जन्म होना सिद्ध होवेगा परन्तु ऐसा लेख भी कहीं देखनेमें नहीं आया और युक्ती वा अनुमान द्वारा भी यह नहीं घटता कि एक चौकड़ी तककी समयमें अर्थात् तेतालीस लाख बीस हजार (४३२००००) वर्षों तक की समयमें सर्व जीवोंका एक एक वार जन्म हो कर शेष वर्षोंमें सर्व जीव जन्म हीन ही रहते हैं।

इस वास्ते सर्वत्र एक समयको न मान कर भिन्न भिन्न पृथ्वीयों पर भिन्न २ समयका ही मानना विचार द्वारा सिद्ध

होता है। क्योंकि ऐसा मानने से सर्व काळके युगादिकोंकी समयोंके सर्व जीवोंको पांच सौ वर्षमें सागी समय मिळ जाती हैं और समयानुकूळ पांच पाच सो वर्षों से ही पुनः जन्म हो जाता है।

प्रश्न—महाराज आपने कहा था कि कल्पके आदि से लेकर कल्पान्त तककी समयमें मनुष्य पूर्व जन्म वाले सागी ही सरीरको पाते रहते हैं और भोग भी वही भोगते हैं जो पूर्व जन्ममें भोग चुके थे और चेष्टा भी वही होती है जो पूर्व जन्ममें हुई थी सो पूर्व जन्मके सदृश ही चेष्टा होनेमें भगवद्गीताका प्रमाण भी आपने दीया था सो ठीक ही है परन्तु वैसाका वैसा पुनर्जन्म होना अभी तक हमारी बुद्धिमें नहीं जचता इस वास्ते कृपा करके और भी किसी युक्ती द्वारा हम लोगोंको समझाइये कि जिस से आपके कहने से पूरा विश्वास हो जाय।

उत्तर—परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्॥
धर्म संस्थाय नार्थाय संभवामी युगे युगे।
गीता अ: ४ श्लोक ८ वाँ।

अर्थ-साधू अर्थात् श्रेष्ठ (धर्मज्ञ) पुरुषोंकी रक्षाके लिये व दुष्कृति अर्थात नीचों (दुष्टों) के विनाशके वास्ते और ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र यह चार वर्ण हैं व ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वान प्रस्थ, सन्यस्त, यह चार आश्रम कहळाते हैं। इन वर्णाश्रमोंके भिन्न २ धर्म्म, मनु आदि धर्म शास्त्रोंमें विस्तार पूर्वक वर्णन किये हैं उन वर्णाश्रमोंके धर्म्मका तिरो भाव होने से पुनः वर्णाश्रमोंके धर्म्मकी मर्यादा स्थापन करनेके अर्थमें (भगवान्) श्रीकृष्णावतार वारम्वार धारण किया करता हूँ यही इस श्लोकका भाव है।

भगवान्के इस वाक्य से यह सिद्ध होता है कि कृष्णावतार अनेक वार तो पहिले हो चुके और अनेक वार फिर भी होते रहेंगे। क्यों कि प्रवाह रूप से जगत् अनादि और अनन्त हैं। इसी लिये समयानुकूल वारम्वार कृष्णावतार भी होते रहते हैं।

अब इस विषय पर विचार करना चाहिये कि असंख्य वारके कृष्णावतारों की असंख्य प्रकारकी लीला अर्थात् अवतार, अवतारमें भिन्न भिन्न लीला होती है या श्रीकृष्णमें सर्व अवतारोंमें एक सी ही लीला होती है जैसी कि पांच हजार वर्ष पहिलेके समयमें इस पृथ्वी पर हुई थी। कदाचित कोई कहे कि प्रति अवतार श्रीकृष्ण महाराजकी भिन्न २ लीला हुआ करती है सो तो असंभव है क्यों कि सद्ग्रन्थोंमें केवल यही देखनेमें आता है कि श्रीकृष्णजी द्वापर युगके अन्तमें वसुदेव देवकीके यहाँ मथुरामें जन्म कर नन्द यशोदा के घर गोकुलमें पाले गये थे इत्यादि सब लीलाका स्मरण कर लेना चाहिये। इन से विपरीत यह लेख तो कहीं नहीं देखनेमें आया कि अमुक कल्पमें या मन्वन्तरमें कृष्णावतार द्वापर युगको छोड़ कर सत्य युगमें वा त्रेता युगमें अमुक ब्राह्मण वा वैश्यके घर हुवा था और वह लीलाकी थी जो इन लीलाओं से विपरीत थी इसलिये भिन्न २ लीलाका होना कदापि सिद्ध नहीं होता फिर भी सुनिये इस समय इस कल्पकी सृष्टिकी लग भग ४५० साढ़े चार सौ चौकड़ी वीत गई हैं और एक चौकड़ीके पश्चात् पहिले वाला वही समय आ जाया करता है इसलिये इस कल्पकी सृष्टिमें भी इस भूमि पर ४५० चार सौ पचास वार कृष्णावतार हो चुकना सिद्ध होता है। यदि प्रथम अवतार से द्वितीय अवतारकी लीला विलक्षण होती होवे तो एक श्रीकृष्ण महाराजके साढ़े चार सौ प्रकारके जीवन चरित्र होने चाहिये सो तो दो या

तीन प्रकारके भी देखनेमें नहीं आते इस लिये प्रति अवतार भिन्न २ लीलाका होना न मान कर महाराजके सर्व अवतारोंमें एक सी ही लीलाका होना अर्थात् पहिले अवतारके सदृश ही द्वितीय अवतारकी लीलाका होना मानने योग्य है। सो लीला यह है—चन्द्र वंशी क्षत्रियोंमें महाराज यदुकी सन्तान यदु वंशी नाम से कहलाती थी जिन यदु वंशियोंमें शूर सेनके पुत्र वसुदेवजीका विवाह मथुरा नरेश महाराज उग्रसेनके कनिष्ट भ्राता देवककी पुत्री देवकी के साथ हुवा था, जिनके उदर से श्रीकृष्ण महाराजका अवतार हुवा है। जिस समय महाराजका अवतार हुवा था उस समय वसुदेव व देवकी दोनों ही उग्रसेनके पुत्र कंसके हुक्म से एक अलहदे स्थान में कैद थे। परन्तु बालकोंकी हत्या करने वाले कंसके भय से वसुदेवजी श्रीकृष्णको प्रकट होते ही छिपा कर यमुना पार लेजा गोकुलमें अपने मित्र नन्दकी रानी यशोदाके पास जा सुलाया और यशोदाके भी उस समय एक पुत्री उत्पन्न हुई थी उसे इस विचार से ले आया कि कन्याको देख कर कंस नहीं मारेगा। परन्तु देवकीके आठवें गर्भ से अपनी मृत्युको समझने वाले निर्दयी कंसने उस कन्याकी हत्या करने से भी मुँह नहीं फेरा किन्तु एक और भी आज्ञा जारी करवा दी कि हालके जन्मे हुवे तमाम बालकोंको मार डालो। भर्तृहरिने ठीक ही कहा है कि दुरात्माओंको अन्य प्राणियों पर करुणा (दया) नहीं आती उसी आज्ञाका पालन करनेके लिये पूतना राक्षसीने गोकुलमें आ कर अनेक बालकोंको हनन किया, पश्चात् जब महाराजको भी जहर लगे हुवे स्तनों से दूध पिलाने लगी तो महाराजने दूधके साथ ही उसी राक्षसीके प्राणोंको भी खींच लिये। इसी तरह कंसके

भेजे हुवे तृणावर्तादि अनेक राक्षसोंको महाराजने बाल्यावस्थामें ही मार गिराये।

वसुदेवजीकी दूसरी रानी रोहिणीजी जो कुछ दिन पहिले से ही नंदके घर रहती थीं उनके उदर से श्रीबलदेवजी पहिले से ही उत्पन्न हो चुके थे, धन्य व्रज वासियोंके भाग्यको जो इस समय श्रीकृष्ण बलदेवके बाल चरित्रोंको निरीक्षण करते हुए तुतली बोली को सुन कर जन्म सफल करते थे। अहा! उस समय समग्र व्रज मण्डलमें प्रभु भक्ति साक्षात् अपना स्वरूप धारण करके यमुनाके प्रवाहकी तरह बहती हुई वृन्दावनको आच्छादन कर रही थी गोपियाँ मक्खनके लोभ से महाराजको अपने घर बुला कर आनन्दित होतीं थीं, महाराज भी गोप कुमारोंके साथ बच्छा वा गौ चराते, बांसुरीको बजाते, यमुनाके तीर रास विलास करके व्रज भक्तोंको इतना सुख देते थे कि जिनकी सोलवीं कलाका सुख भी स्वर्गमें नहीं है।

यमुना से काली नागको निकालना, गोवर्धन पर्वतको उठा कर इन्द्र वृष्टि से व्रज वासियोंकी रक्षा करना, फिर दोनों भाईयों का अक्रूरके साथ मथुरा पधार कर राजा कंसको चाणूर मुष्टिक आदि पहिलवानोंके सहित मारना, उग्रसेन महाराजको पीछे राज सिंहासन पर बैठाना, माता, पिताको कारागार से मुक्त कर आनन्दित करना, फिर नन्दादिकोंको धैर्य बँधा कर पीछे लौटना इत्यादि लीलायें की।

एक समय व्रज भक्तोंके प्रेमका चिन्तवन करके जल पूरित नेत्रों से महाराज उन्होंकी प्रशंसा करते हुए ऐसा स्मरण करने लगे।

चौ० कहाँ नवल व्रज गोप कुमारी, कहाँ राधे वृष भान दुलारी।

सो० कहाँ सखन को संग कहाँ खेल वृन्दावन बिपिन ।
कहाँ बहु प्रेम तरंग, वंशीवट यमुना निकट ॥

आह ! यह कैसा स्नेहका वाक्य है इसका भाव समझने से हृदय पानी पानी हो जाता है इसलिये धन्य है ब्रजको और ब्रज भक्तोंको कि जिनके साथ महाराजका ऐसा प्रेम था । यह नियम ही है कि जो प्राणी ईश्वरके साथ जितना प्रेम करता है तो ईश्वर भी उस प्राणीके साथ उतना ही प्रेम करता है न्यूनाधिक नहीं ।

ब्रज वासियोंने महाराजकी लीलाका निरीक्षण करके अति आनन्द लाभ किया था परन्तु जब महराज मथुरा से द्वारका पधार गये तब महाराजके वियोगका दारुण दुःख उन्हीं ब्रज वासियोंको हुवा था इस से यह उपदेश मिलता है कि विषय जन्म सुख चाहे जैसा उत्तम क्यों न हो परन्तु संस्कार दुख व परिताप दुख व परिणाम दुख इन तीनों प्रकारके दुखों करके मिश्रित (मिले हुए) ही हुआ करते हैं और विषय सुख अनित्य भी होता है सदा एक रस कदापि नहीं रहता इसी लिये विद्वान लोग विषय वासनाको त्याग कर नित्यानन्द की प्राप्तिके लिये ब्रह्म विद्याका अनुसरण किया करते हैं ।

पश्चात् दोनों भाई सान्दीपनि पण्डितके घर विद्याध्ययन करने को गये वहाँ पर सुदामा ब्राह्मण से मित्रता होने से कालान्तरमें सुदामा द्वारिका आये तो उसको अटूट धन दे कर उसका दारिद्र दूर किया और गुरु दक्षिणामें समुद्रमें डूबे हुए गुरुके पुत्रको जीवित ला दिया । फिर मथुरा पर चढ़ आने वाले जरासिन्धकी सेनाका कई वार हनन किया और काल यवनको मुचुकन्दकी दृष्टि से भस्म करवा दिया पश्चात् राजधानीको मथुरा से उठा कर समुद्रके बीच द्वारिका पुरीमें स्थापन की । फिर शिशुपालादि अनेक राजाओंका

मान भंग करके कुन्दनपुरमें राजा भीष्मकी कन्या रुक्मिणीको अम्वा के मंदिर से उठा लाये इन से विवाह करके फिर सत्यभामादि सात पटरानियोंके साथ विवाह किया। पश्चात् जरासेन्धको भीमसेनके हाथ मल्ल युद्धमें मरवा कर अनेक राजाओंको कारागार से मुक्त किया और भौमासुरको मार कर सोलह हजार एक सौ राज कन्याओंको छुड वाया और उनकी इच्छाके अनुसार उन से भी महाराजने एक ही साथ विवाह किया। इस लिये महाराजकी असंख्य सन्तान बढ़ गई थी।

जब अनेक योद्धाओं सहित दन्त वक्र वा मिथ्या वासुदेव आदिकों जो द्वारका पर चढ़ आये थे तो उनको मार कर महाराज युधिष्ठिरके राज सूर्य यज्ञके आरम्भमें शिशुपालको भी मारा। और जव कौरव पाण्डवोंके वीच ईर्षा द्वेष करके विरोध उत्पन्न होने से महाभारतका युद्ध आरम्भ हुआ तो उस समय मोह करके धर्माधर्मके बिचार से रहित वुद्धि वाले अपने प्रिय सखा अर्जुनके पूछने पर भगवतगीताका उपदेश करके उनका मोह रूपी कार्पण्य दूर किया और विजय प्राप्ति करवा कर पाण्डवोंको पुनः राजा वना छत्तीस वर्ष निष्कण्टक राज्य भोग सुख प्रदान किया। जब महर्षि दुर्वासाके शाप से प्रभास क्षेत्रमें कुछ यदुवंशी परस्पर लड़ मरे और एक भीलके हाथ से पैरमें बाण लगनेके निमित्त से श्रीकृष्ण महाराज भी पीछे गोलोक धामको पधार गए तब पाण्डव भी उस समय बीर सन्यास धारण करके हिमालयमें द्रौपदी सहित जा गले।

जब जब कृष्णावतार होता है तब तब यही लीला हुआ करती हैं जो मैं संक्षेप से वर्णन कर चुका हूँ। इस से यह आपको मानना पड़ेगा कि जब जब कृष्णावतार होता है तब तब नन्द यशोदा गोपी

ग्वाल वसुदेव देवकी कंस कौरव पाण्डव आदिक असंख्य मनुष्य जरूर ही उत्पन्न होते हैं क्योंकि इन लोगोंके जो कि महाराजकी लीलामें सम्बन्ध रखते हैं उत्पन्न हुए विना महाराजकी वही लीला कदापि हो ही नहीं सक्ती। जब नंदादि असंख्य मनुष्योंका महाराज के साथ साथ उसी समय पर उत्पन्न होना आप स्वीकार करेंगे तो यह भी आपको मानना पड़ेगा कि नन्दादिककी तरह हम लोग भी अपने उसी समय पर उत्पन्न हुआ करते हैं क्योंकि जैसे उस समय पर असंख्य मनुष्य थे तो अनुमान होता है कि उस से पहिले उन लोकोंके पुरुष भी थे तैसे ही इस समय पर उन्हींके सन्तान भी हैं जब वह असंख्य नन्दादि पहिले की तरह ही हुवा करते हैं तो उनके पुरुष वा सन्तान वा अन्य कोई किस तरह उसी रूप से उत्पन्न नहीं होंगे। कहनेका मतलब यह कि सबके सब उसी रूप में जरूर उत्पन्न होते हैं क्योंकि सृष्टिका कर्म सर्व जातियोंके वास्ते एकसा ही हुआ करता है।

जैसे एक वर्तमें बहुत से चावल पकाए जाते हैं उन चावलों में से एक वा दो चावल पके हुए देख कर अनुमान होता है कि यह सब चावल पके हुवे हैं। ऐसा अनुमान सर्वत्र माननीय होता है तैसे ही उन नन्दादिक असंख्य मनुष्योंका पूर्व जन्मके सदृश ही उत्तर जन्म होना अर्थात उसी ही स्वरूप से उत्पन्न होना मानने से यह भी आपको अनुमान द्वारा मानना पड़ेगा कि अस्मदादि सब मनुष्योंका भी नन्दादिकोंकी तरह पूर्व जन्मके सदृश अर्थात उसी ही स्वरूप से उत्तर जन्म धारण किया करते हैं यह अनुमान भी पूर्व अनुमानके सदृश ही मान्य है। क्योंकि सब मनुष्योंका भी परस्पर सजातीय सम्बन्ध है।

इतना कह कर महात्मा फिर कहने लगे, प्रिय जनो! तुमने

युक्ति प्रमाणके वास्ते इन से पूछा था जिसके उत्तरमें बहुत सी युक्तियां हैं परन्तु यह युक्ति बहुत ही उपयोगि है सो कह सुनाई अब तुम लोगोंकी जो इच्छा हो सो पूछिये। इतना सुन कर सभ्यगण फूले न समाये और महात्माकी ओर इस युक्तिकी बहुत सी प्रशंसा करके इस प्रकार कहने लगे।

महाराज! इस युक्ति व प्रमाणों द्वारा व अनुमान करके उसी नाटकका होना तो हम लोक अच्छी तरह समझ गए परन्तु आपके मुख से निकले हुए वचनामृतों से अभी तक हम नहीं अघाये इस लिये अन्य कोई कथा या युक्तियाँ जो कि इसी विषय पर हों कृपा करके फिर भी सुनाईये जिस से हमारी इच्छा पूर्ण होनेके साथ उसी नाटककी पुष्टि भी हो।

महात्मा बोले। सुनो भाईयों! रात्रि तो अधिक आ जायगी परन्तु कोई चिन्ता नहीं। कहते हैं चित देकर सुनिये-यह अध्यात्म रामायणके अयोध्या कांण्डकी कथा है कि जिस समय श्रीरामचन्द्रजी महाराजको बनवास करनेकी आज्ञा हुई थी उस समय उसी आज्ञाको सुन कर महारानी जानकी भी वनवासके लिये तैयार हो गई जब महाराज रामचन्द्रजीने बनकी आपतियाँ वर्णन करके महारानीको संग चलने से वारम्वार रोकने लगे तब तो सती गरज कर बोली महाराज! क्या, आपने कभी रामायण नहीं सुनी? यह तो बतलाईये पहिले कभी ऐसा कौन राम बनको गया कि जिसके साथ जानकी न गई हो। इतना सुन कर महाराज तूष्णी भावको प्राप्त हुये और जगदम्बा महाराजके संग चल दीनी। और सुनिये! योग वाशिष्टमें लिखा है कि महाराज काक भुसन्डी ऋषीने कहा कि मैने २७ सत्ताईस वार पहिले भी रामावतारको हुए देखा था।

महाभारतमें लिखा है कि, जब श्रीकृष्ण महाराजके गौ लोक धाम पधारने वा द्वारिका पुरीका सिन्धूमें निमग्न होनेके पश्चात् पांडव गणोंने यह निश्चय कर लिया कि अब हम लोगोंका खेल समाप्त हो चुका इस लिये हमको चाहिये कि अब इस असार संसारको छोड़ कर अपने लोकको चले जांय ऐसा विचार करके मथुराका राज्य प्रद्युम्नजीके पौत्र अनिरुद्धजीके पुत्र वज्रको वा हस्तिनापुरका राज्य परीक्षितको सौंप कर उसका भार सुभद्राको देकर द्रौपदी सहित पांचों भाई वीर सन्यास धारण करके हस्तिनापुर से चल निकले उस समय बाकी चारों भाई तो शस्त्र रहित थे परन्तु एक अर्जुन गांड़ीव धनुष बाण धारण किये था। जब चलते २ समुद्रके पास गये तो वहां पर अग्नि देवताने आ कर अर्जुन से कहा महाराज! यह समय शस्त्र रखनेका नहीं है इस लिये आप भी अपना गांड़ीव धनुष व अक्षय तूणी हमको सौंप दीजिये, जब फिर आपका अवतार होगा उस समय फ़िर भी यही धनुष बाण आपके वास्ते मैं लाकर उपस्थित कर दूंगा। इतना सुन कर अर्जुनने भी शस्त्र छोड़ दिया। और देखिये।

श्लोक। नत्वेवाहं जातु नासं नत्वं नेमे जनाधिपाः।
नचैव न भविष्यामः सर्वे वय मतः परम्॥

गी॰ अ॰ २ श्लोक १२

भगवद् वाक्यके इस श्लोकका अर्थ यह है कि मैं श्रीकृष्ण इस समय से पहिले नहीं था ऐसा तू मत जान किन्तु मैं कृष्ण से पहिले ही था और तू अर्जुन पहिले नहीं था सो भी नहीं किन्तु तू अर्जुन भी पहिले था और यह राजे लोक जो इस समय रण भूमिमें लड़ मरनेके लिये उपस्थित हुए हैं सो सब पहिले नहीं थे ऐसा भी तू मत समझ किन्तु यह राजे लोक सभी इस समय से

पहिले भी थे और भविष्यत् कालमें मैं श्रीकृष्ण और तू अर्जुन और यह सब राजे लोग फिर भी जरूर होवेंगे।

इतनी कथा सुनाकर महात्मा कहने लगे—प्रिय जनो! यह वही कथायें है कि जिनको पाकर मैं बहुत आनन्दित हुआ था और तुम लोगों से शास्त्रीय प्रमाण कह कर फिर बतलाऊँगा ऐसी प्रतिज्ञा की थी। अब इनके भावको भी समझ लीजिये जो कि हमारे मान्य उसी नाटकके होनेमें कितनी पुष्टि कर रहा है।

अध्यात्म रामायणकी कथा से यह सिद्ध होता है कि जब जब रामावतार होता है तब तब रामचन्द्रजी बनवासके लिये जाया ही करते हैं और महारानी जानकी भी महाराजके संग रहा करती हैं इस लिये अनुमान होता है कि रावणको मारना इत्यादि सर्व लीला भी वही हुवा करती हैं। योग वाशिष्टकी कथा से यह सिद्ध होता है कि कृष्णावतारकी नांई रामावतार भी बारम्बार अपना समय पा कर अर्थात् हर त्रेता युगके अन्तमें हुआ करता है क्योंकि महर्षि काक भुषन्डीने कहा कि अठाईस वार रामावतार हुएको मैंने देखा।

प्रियजनो! इस समय वैवस्वत मनु महाराजकी अठाईसवीं चौकड़ी प्रचलित है, किन्तु अठाईस बार ही इस मन्वन्तरमें इस पृथ्वी पर त्रेता युग आ चुका है और इतना ही महाराजका अवतार हुवा इस लिये हर त्रेतामें रामावतारका होना सिद्ध होता है और कृष्णावतारका हर द्वापरके अन्तमें होना पहिले भगवद्गीताके प्रमाण से सिद्ध हो ही चुका था। जब श्रीकृष्णचन्द्र व रामचन्द्रजी इस पृथ्वी पर हर चौकड़ीमें एक २ बार अवतार धारण करते हैं तो अनुमान द्वारा जाना जाता है कि विष्णुजीके ~~व्यय~~ अन्य अवतार भी इन्हीकी तरह हर चौकड़ीमें एक २ बार इस

पृथ्वी पर अवश्य होते हैं। यहां पर हमारे पाठकोंको इस बातके जाननेकी उत्कण्ठा होती होगी कि कुल कितने अवतार, किस २ नाम वाले होते हैं और क्या क्या क्रिया करते हैं। इसका वर्णन संक्षेप से पूर्वार्ध समाप्त होने पर चौवीस अवतारोंके भजनमें करूंगा।

प्रिय पाठकगण! अवतारोंका तो नियत समय पर बारम्बार होना आपके सन्मुख सिद्ध हो ही चुका है अब इन अवतारोंकी तरह ही अस्मदादि जीवोंका भी उसी स्वरूपमें होना अनुमान व अवतारोंके दृष्टान्त से समझ लेना चाहिये।

शंका—यदि कोई कहे कि हर त्रेतामें रामावतार व हर द्वापरमें श्रीकृष्णावतारका होना तो ठीक जंचता है और लीला भी वही हुआ करती हैं परन्तु अवतारोंके दृष्टान्त से राम, कृष्ण, की तरह अस्मदादि जीवोंका बारम्बार उसी स्वरूपमें होना व चेष्टा भी वही होनी, मानने योग्य नहीं क्योंकि अवतार तो भगवानके हुवा करते हैं सो भगवान् स्वतन्त्र हैं और अपने कृत कर्म्मानुकूल फल सुख दुःखादि भोगके निमित्त अवतार धारण नहीं किया करते। और जीव परतन्त्र हैं सो अपने किये हुवे कर्म्मोंके फल सुख दुःखादि भोगके निमित्त से ही बारम्बार कर्म्मानुकूल शरीर धारण किया करते हैं। इस वास्ते केवल भगवान्का दृष्टान्त तो जीवों पर नहीं घटता।

समाधान–ऐसी शंकाका समाधान महाभारतकी कथा से भली प्रकार सिद्ध होता है। देखो इस कथा से अर्जुनका फ़िर अर्जुन ही होना सिद्ध होता है क्योंकि अग्निदेवने अर्जुन से कहा कि आप अपना गांडीव धनुष इस समय मुझको सौंप दीजिये जब आपका अवतार फिर से होगा उस समय फिर भी आपको यही महान धनुष वापिस लौटा दूंगा। प्रियजनो! इस समय भी

यह अजय गांडीव धनुष व अक्षय तूणिका अग्निदेवने ही अर्जुनको दिये थे। इस से सिद्ध होता है कि वारंवार अर्जुनको अग्निदेव ही गांडीव धनुष दिया करते हैं और खेल समाप्त होने पर पीछे ले लिया करते हैं। अब जरा विचार कीजिये कि अर्जुन ईश्वर कोटि में नहीं है। किन्तु जीव कोटिमें ही है इस लिये भगवानके अतिरिक्त अन्य जीवोंका जन्म भी वारम्बार अवतारोंकी भांति वही होना उपरोक्त कथा से खूब ही सिद्ध होता है।

शंका—कदाचित कोई कहै कि अर्जुन भी प्राकृति जीवोंकी नांई साधारण जीव नहीं है किन्तु देवान्स है और अर्जुन व श्रीकृष्ण नर नरायणका अवतार भी है, इसलिये प्राकृति जीवोंकी इन से तुलना नहीं होती। इस वास्ते साधारण मनुष्योंका अर्जुनके समान वहीका वही होना अर्जुनके दृष्टान्त से नहीं बनता।

समाधान--इस शंकाका निवारण भगवद्गीताके इसी श्लोक से हो सकता है जो मैं अभी आप लोगोंको सुना चुका हूँ।

भगवानने कहा कि मैं श्रीकृष्ण और तू अर्जुन और ये राजा लोग पूर्व कालमें भी थे और इस समय प्रत्यक्ष हैं वो फिर भविष्यतमें भी अस्मादादि सर्व होवेंगे। प्रियजनों! इस वचन से साफ प्रतीत होता है कि श्रीकृष्ण व अर्जुनकी तरह अन्य समस्त अस्मदादि जीव भी वही हो हुआ करते हैं, क्योंकि "इमे जनाधिपा" इस वचन से महाराजने ससैन्य सर्व राजाओंको हाथके इशारे से वतला कर कहा यह सर्व पहिले भी थे और आगे भी होवेंगे।

इसका भाव केवल स सैन्य राजाओं पर ही नहीं किन्तु सभी पर पड़ता है क्योंकि यह तो हो ही नहीं सकता कि उस समयके तो असंख्य मनुष्य वहीका वही हुआ करें और अन्य समयके नहीं इस वास्ते अस्मदादि सबोंका महाराजके कथनानुसार अवतारको

नांई वही शरीर व चेष्टाका होना भली भांति सिद्ध होता है, जैसा कि पहिले जन्ममें था।

पाठक वृन्द ! इस प्रकार शास्त्रोंके आशयको भी वही नाटकके उपयोगी समझ कर सभ्यगणोंके आनन्दकी सीमा न रही और महात्माको हार्दिक धन्यवाद देते हुए इस प्रकार पूछने लगे—

प्रश्न—महाराज ! अन्य कथाओंको तो किसीने सुनी है और किसीने न भी सुनी है परन्तु भगवद्गीताके मूल व अर्थको तो हिन्दू जातिके वैष्णव व शैव आदि प्रायः सब ही विद्वान विचारते हैं क्योंकि यह ग्रन्थ सबहीके लिये यहां तक परम पूज्य है कि अन्त समयमें कुटुम्ब वाले अन्य कथाओंको छोड़ कर केवल इसी भगवद्गीताको पढ़ कर सुनाया करते हैं। बहुत से विद्वान नित्यकर्मकी नांई नियम बद्ध इसका पाठ किया करते हैं। बहुत से अर्थका विचार करते हैं अर्थात् भगवद्गीता अति प्रसिद्ध है। इस पर बहुत से विद्वानोंने संस्कृत अंग्रेजी, लेटिन, जर्मन आदि भाषाओंमें टीकाएं व अनुवाद भी किया है और कई सज्जनोंने हिन्दी में भी अर्थ करके छपा दिया है। इस वास्ते उत्तम व मध्यम बुद्धि वाले पुरुष कोई इसको विचार रहे हैं। यह तो बड़ी आश्चर्यकी बात है कि ऐसे सुप्रसिद्ध ग्रन्थमें फिर भी स्पष्ट रीति से साफ बोध होने योग्य इस सेम (वही) नाटकका होना अन्य विद्वानोंने क्यों नहीं कहा क्या राईकी ओटमें पर्वत छिपा रहता है ?

उत्तर—महात्मा बोले—सुनो भाइयो ! हमारे परम पूज्य स्वामी शंकाराचार्यजी महाराजने इसी भगवद्गीता पर भाश्य किया है, उसका तात्पर्य अद्वैतकी सिद्धिमें है और, शंकर मतानुयायी महा-पुरुष व विद्वानोंने वे जो टीकायेंकी हैं सो सब अद्वैत मतके अनुसार ही हैं और वैष्णव सम्प्रदायके परम पूज्य चारों आचार्योंने जो टीकायें की हैं उनमें क्रम से किसीने तो द्वैतको और किसीने द्वैता-

द्वैतको किसीने विशिष्टा द्वैतको किसीने शुद्धा द्वैतको सिद्ध किया है और जिस जिस सम्प्रदायके वैष्णवोंने जो टीका की है उन्होंने अपने अपने आचार्योंके मतानुसार ही अपने मतकी पुष्टिके लिये ही की है। इस प्रकार हिन्दु धर्मके जितने आचार्यों व विद्वानोंने इस श्रीमद्-भगवद्गीता पर जितनी टीकायें की हैं इसके अक्षरार्थके भावको अपने मतकी पुष्टिके लिये ही खींचा तानी करनेमें प्रवृत्ति रहे हैं, अन्य अर्थके खोजनेका इन्हें अवकाश भी प्राप्त नहीं हुआ।

फिर भी सुनिये सत शास्त्रोंने पारमार्थिक वा व्यवहारिक व प्राति भासिक इन भेद करके तीन प्रकारकी सत्ता मानी है। जहां चेतन भिन्न अनात्म पदार्थ जगदादि सबको स्वप्न नगर व नभनीलताकी नाई मिथ्या वर्णन किया है वहां पारमार्थिक सत्ताका उपयोग है और जहां जगतको वा जगत्के व्यवहारोंको भी सत्य माना है वहां व्यवहारिक सत्ता मानी गई हैं और जहां रज्जुमें सर्प सुक्तिमें रजत आदिक विना हुए पदार्थोंका भी सत्य वस्तुकी तरह प्रतीत है वहां प्राति भासिक सत्ता है। भगद्‌गीता पर विद्वानोंने जो टीकायें की हैं वहां पर मुख्य पारमार्थिक सत्ताका ही उपयोग किया है। इसीलिये व्यवहारिक सत्ता से सम्बन्ध रखने वाले वही नाटकके होने पर उन्होंने ध्यान भी नहीं दिया।

वही नाटकके होने पर ध्यान न देनेका एक और भी कारण है कि जिस वस्तुके प्रादुर्भाव करनेका सौभाग्य देनेकी रचना परमेश्वरने जिस शरीरके वास्ते निर्मित्त की है वह वस्तु उसी शरीर करके ही प्रकट हुआ करती है अन्यों से नहीं। देखो तार रेल वा विद्युत (विजली) को काममें लाना इत्यादि अनेक कौशल इस समयमें प्रकट हो चुके हैं और फिर होते रहते हैं क्या पहिले समयमें कोई ऐसा शिल्पी विद्याका विद्वान् नहीं था? वा इन विद्याओंका प्रादुर्भाव नहीं कर सकता था? नहीं! नहीं!!

कदापि नहीं ! विश्वकर्मा से आदि लेकर बहुत से विद्वान भी थे और इन विद्याओंका प्रादुर्भाव कर भी सकते थे, परन्तु ईश्वरको इसी समयके विद्वानोंको ही तार रेलादि इल्मोंके प्रादुर्भाव करनेका सौभाग्य देना स्वीकार था; इसीलिये पहिले समयके विद्वानोंने तार, रेल पर ध्यान भी नहीं दिया इस वास्ते यही नाटकके होनेका अन्य विद्वानोंके ध्यानमें न आने से भी कोई आश्चर्य नहीं है क्योंकि जैसे परमेश्वर सूक्ष्म से सूक्ष्म व स्थूल से स्थूल है अर्थात् छोटे से भी छोटा बड़े से भी बड़ा है और सर्वत्र व्यापक होने से सर्वजीवोंके अति समीप भी है, परन्तु राईकी ओट से पर्वतके छिपे रहनेकी नाई ईश्वरका सिवाय चित्त निरोधी योगियोंके अन्य प्राकृत जीवोंको साक्षात् कार नहीं होता, तैसे ही हरसमय अनेक विद्याओं व पदार्थ इस जगत्में छिपे हुए हैं, परन्तु सिवाय अधिकारियोंके अन्य किसीकी समझमें नहीं आते। इसलिये जिन जिनके प्रादुर्भावका सौभाग्य जिस २ को मिलना परमात्माने रक्खा है उन उनका प्रादुर्भाव उस उस करके ही हुआ करता है अन्यों करके नहीं।

प्रियजनों ! इतना सुन कर सभ्यगण बोले--महाराज ! आपकी दया से यह तो हम समझ गये "नत्वे वाहं" इस श्लोकार्थका भाव अन्य विद्वानोंने तो पारमार्थिक सत्ताको लेकर केवल आत्मा पर लगाया है और कहा है कि आत्मा पहिले ही था और आगे भी रहेगा अर्थात तीनों कालोंमें आत्माका अभाव नहीं होता और आप इसका भाव व्यवहारिक सत्ताको लेकर शरीर विशिष्ट जीवात्मा पर लगा कर कहते हो कि इस शरीर सहित आत्मा पहिले ही था और आगे भी रहेगा किन्तु इस सृष्टिके आदि से लेकर अन्त पर्यन्त उपस्थित रहेगा।

महाराज ! अन्य विद्वानों से आपके विचारमें इतनी ही विल-

क्षणता है इसलिये आपका विचार अवश्यय नूतन है, परन्तु हम लोग इस पर अविश्वास नहीं करते क्योंकि इसी भगवद्गीता से विद्वानोंने अनेक प्रकारके भिन्न भिन्न अर्थ निकाले हैं वैसा ही आपने भी एक प्रकारका विचित्र अर्थ निकाला है सो सब अर्थ अक्षरार्थके अनुकूल ही हैं। यह आप पहिले ही सिद्ध कर चुके थे कि हमारे शास्त्रोंके एक संकेत से अनेक प्रकारका मतलब निकलता है इस लिये आपका वचन मान्य भी है, परन्तु केवल इसी श्लोक से वही नाटकका बारम्बार होना तो सिद्ध नहीं होता।

प्रश्न—महाराज! इस श्लोकका तो यही भाव है कि श्रीकृष्ण अर्जुन और अन्य राजे लोग जो युद्धस्थलमें उपस्थित थे सो सब वर्तमान काल से पहिले भी थे और पीछे भी होते रहेंगे। इस भगवद् वाक्य से तो यह भी मान सकते हैं कि केवल एक ही जन्म पहिले थे, यह तो सिद्ध नहीं होता कि अनेक जन्मों से कृष्ण अर्जुन होते हुए चले आये हैं। इस वास्ते कृष्ण अर्जुनके अनेक जन्म होनेमें अन्य कोई शास्त्रीय प्रमाणकी आवश्यकता है सो भी पूरी कीजिये।

उत्तर—प्रियजनों! "ऐसी ऐसी बहुत सी शंकाओंका समाधान एक भगवद्गीता से ही भली प्रकार हो सकता है इस वास्ते भगवद्गीता सेम (वही) नाटकके होनेमें प्रमाण देनेके लिये बड़ी उपयोगी है। बहुत से विद्वानोंने इसका लक्ष निवृत्तिमें लिया है परन्तु प्रवृत्तिमें भी इनका तात्पर्य खूब ही घटता है। यदि कोई विद्वान इस तरफ ध्यान देकर नूतन प्रकारकी टीका करे तो बड़ी ही आनन्द दायक और जगत्की उपकारणी हो। क्योंकि यह कल्पवृक्ष अमृतमय है। इसका फल रूपी अमृत तो विद्वानोंने विख्यात कर ही रक्खा है, परन्तु इसका पत्र पुष्पादि रूप अमृत व्यवहारिक सत्ताको

लेकर प्रवृत्ति मार्ग से विख्यात होनेकी पूरी आवश्यकता है। मैं भी कभी कभी इच्छा करता हूं कि किसी पण्डित महोदयकी सहायता लेकर गीताके अक्षरार्थ पर अपने दिलका भाव प्रकट करूँ, फिर भी शरमाता हुआ सोचता हूँ कि मुझ तुच्छ बुद्धि खद्योत समको ऐसे महत् कार्यमें जो सूर्य सम विद्वानोंके करने योग्य है हस्ताक्षेप करनेका साहस करना ठीक नहीं। अब सचित्त होकर अपने प्रश्नका उत्तर सुनिये जिसके लिये मैं भगवद्गीताका ही प्रमाण देता हूँ।

श्लोक—बहूनिमे व्यतीतानि जन्मानि तवचार्जुन।
तान्यहं वेद सर्वाणि नत्वं वेत्थ परं तप॥ अ० ४ श्लो. ५

अर्थ।—श्रीकृष्णजी कहते हैं, हे अर्जुन! हमारे और तुम्हारे आगे बहुत से जन्म व्यतीत हो चुके हैं उन भूतकालके सर्व जन्मोंको मैं जानता हूँ परन्तु तू नहीं जानता।

सभ्य जनो! इस से अधिक और प्रमाण क्या होगा? इसका तात्पर्य आप समझ ही गये होंगे, परन्तु यह भी भेद खोले देता हूँ कि पूर्वके सर्व जन्म महाराजको ज्ञात और अर्जुनको अज्ञात क्यों था इसका कारण यह है कि योगियोंको चित्त निरोधके प्रसाद से तीनों कालोंके दूरस्थ व समीपस्थ सर्व पदार्थ कर विल्ववत् (हाथमें फलकी नाई) प्रत्यक्ष रहता है। युक्त व युञ्जान भेद करके योगी भी दो प्रकारके होते हैं। जो विना किये किसी साधनके जन्म से ही योगी होता है वही युक्त योगी है। और जो साधन सम्पन्न हो कर अभ्यासके बल से सिद्धियाँ पाता है वह युञ्जान योगी है। युक्त योगी ईश्वर कोटिमें होते हैं और युञ्जान योगी जीव कोटिमें।

बाल्यावस्थामें ही यशोदाको मुखमें त्रिलोकी दिखलाना व रज्जू से बन्धनमें नहीं आना ऐसे ऐसे अलौकिक चमत्कार दिखलाने से श्रीकृष्ण महाराजको युक्त योगी समझना चाहिये इसलिये

महाराज त्रिकालज्ञ थे और अर्जुनमें किसी प्रकारका पूर्ण योग नहीं था इस लिये उनकी त्रिकालज्ञ दृष्टि नहीं थी परन्तु उत्तम अधिकारी जरूर थे।

सभ्य गण, अब तौ आपको निश्चय हो गया होगा कि नन्दादिकोंकी भांति हम लोग भी कई जन्मों से वही होते हुए चले आये हैं जैसे कि पहिले जन्मोंमें थे।

इतना सुन कर सभ्यगण कहने लगे,—महाराज! आपके प्रसाद से यह शंका भी हमारी अच्छी तरह से निवृत्त हो गई और यह भी हम समझ गये कि भगवान्के अवतारों व नन्दादिकों की तरह हम लोग भी अपना समय पाकर वही शरीर धारण करते हुए वारम्वार उत्पन्न हुआ करते हैं। परन्तु इस विषय पर एक और भी शंका उपस्थित है कृपया उसका भी निवारण कीजिये।

प्रश्न—महाराज! वही समय तो, एक चौकड़ी के अर्थात् ४३,२०००० तैतालीस लाख, बीस हजार, वर्षोंके पश्चात ही आया करता है कृष्णावतार वो नन्दादिक भी एक चौकड़ीके पश्चात् ही पुनः वही समय आने पर उत्पन्न हुआ करते हैं और हम लोगोंके वास्ते पांच पांच सौ से ही पुनः जन्म होना आपने कहा है इसलिये ४३,२०००० वर्षों से उत्पन्न होने वाले नन्दादिकोंक दृष्टान्त पांच पांच सौ वर्षों से उत्पन्न होने वाले अस्मदादिकों पर ठीक नहीं जंचता।

उत्तर०—सभ्यजनो! आप क्या सोच रहे हैं? क्या इस भूलोक में आठ हजार छै सौ चालीस (८६४०) पृथ्वियोंके होने पर इसी एक पृथ्वी पर तो सृष्टि और वर्णाश्रमोंके धर्मकी मर्यादा स्थापन व धर्ममें ग्लानिके कारण अवतारोंकी आवश्यकता है और अन्य

आठ हजार छै सौ उन्तालीस (८६३९) पृथिवियों पर सृष्टि वा धर्म्मकी मर्य्यादा वा अवतारोंकी आवश्यकता नहीं है? नहीं। नहीं!! ऐसा कदापि नहीं हो सकता। क्यों कि वह सर्व पृथिवियां एक ही लोककी होने से सजातीय धर्म्म वाली हैं। इस लिये सर्व एकसी ही हैं और सृष्टि व धर्म्मकी मर्यादा व वारम्वार अवतारोंका होना सर्व पृथिवियों पर समयानुकूल एकसा ही हुआ करता है इस लिये आप लोगोंको ऐसा निश्चय करना चाहिये कि जहां पृथ्वी है वहां सृष्टि अवश्य हुआ करती है और जहां सृष्टि होती है वहां धर्म्मकी मर्यादा भी हुआ करती है अतः मर्यादा प्रकृतिका धर्म्म होने से समयानुकूल बनती बिगड़ती भी रहती है सदा एक रस नहीं रहती क्योंकि प्रकृतिके कार्य परिणाम वादी हुआ करते हैं। इस लिये जिस २ पृथ्वी पर धर्म्मकी मर्यादा भंग होती है उस समय उस उस पृथ्वी पर महाराजका अवतार भी हुआ करता है। इस से यह सिद्ध होता है कि महाराजका अवतार भी अस्मदादिकोंकी भाँति पांच पांच सौ वर्ष से अन्य अन्य पृथ्वीयों पर होते हुए एक चौकड़ीके पश्चात् फिर दुबारा इसी पृथ्वी पर हुवा करता है। ऐसा नहीं होता कि एक वार अवतार होकर फिर तेतालीस लाख बीस हजार वर्ष (४३२००००) तक महाराज कृष्णावतार धारण न करें। नन्दादिक जो महाराजकी लीलामें सम्बन्ध रखने वाले हैं वह भी सर्व पांच पांच सौ वर्ष से ही पुनः हुआ करते हैं इस वास्ते अस्मदादिकों पर नन्दादिकोंका दृष्टान्त व नन्दादिकों पर अस्मदादिकोंका दृष्टान्त खूब ही घटता है इसमें कोई प्रकारकी शंका होने योग्य नहीं है।

पाठकगण! खण्यबुन्द महात्मा से इस प्रकारका वचन सुन

कर कहने लगे, कि महाराज ! आपने अति उत्तम और गूढ़ रहस्य को बतला कर हम लोगों पर बड़ा ही उपकार किया है इसलिये हम आपके ऋणी हैं हम लोगों से हो सके ऐसी कोई सेवा करनेके लिये आज्ञा दीजिये जिस से हमारा ऋण रूपी बोझ कुछ हलका हो।

महात्मा इन पुरुषोंकी श्रद्धा भरी वाणीको सुन कर कहने लगे— सुनो भाइयो ! आप लोग हमारे ऋणी नहीं हैं किन्तु हम तुम सब परमेश्वरके ही ऋणी हैं सो ऋण रूपी बोझ अपने २ कर्त्तव्य पालन करने ही से दूर होता है इस लिये हमने जो कुछ तुम्हारे प्रश्नोंका उत्तर दीया है अपना कर्त्तव्य समझ कर ही दिया है इसका आप लोगों पर मैंने कोई अनुग्रह नहीं किया है और आप लोग जो हमारा उपकार मान कर प्रत्युपकार करनेके लिये कटि बद्ध हुवे हो सो सज्जन पुरुषोंका यही कर्त्तव्य हुआ करता है कि जो कोई अपने ऊपर उपकार करे उसके साथ तन, मन, धन करके प्रत्युपकार किये बिना कदापि नहीं रहते। इसलिये मैं तुम्हारे हृदयमें सज्जनताका अंकुर उत्पन्न हुआ देख कर बड़ी प्रसन्नताके साथ तुमको धन्यवाद देता हूँ क्यों कि इस समयमें सज्जन थोडे ही होते हैं अधिक तर तो ऐसे होते हैं कि किये हुये उपकार भी नहीं मानते, और कई ऐसे होते हैं कि उपकारको मानते हुए भी प्रत्युपकार करनेमें प्रयत्न नहीं करते, और किये हुवे उपकारको समझ कर प्रत्युपकार करने वाले तो बिलकुल ही कम होते हैं।

तन करके नमस्कारादि और मन करके मान सत्कारादि सेवा हुआ करती है सोतो आप लोग हमारी सेवा कर ही रहे हो अब, रही धन करके सेवा करनी सो धनकी तो गृहस्थियों को जरूरत रहती है हम साधुवोंको धनकी अभिलाषा नहीं है और होनी भी

नहीं चाहिये इस लिये सब प्रकारकी सेवा हमारे वास्ते आप लोग करही रहे हैं, अतः कोई तरहका संकोच न करके जो कुछ हम से पूछना हो कल इसी समय आकर पूछना। अब विलम्ब होगया है आप लोग अपने २ घर पधारिये।

इतना सुनकर सभ्यगण महाराजको नमस्कार करके उठ खड़े हुए और रास्तेमें जब तक घर न पहुंचे परस्पर महात्माकी प्रशंसा करते रहे।

इति श्रीअद्भुत बिचार ग्रंथे तृतीय भागे पूर्वार्ध समाप्त
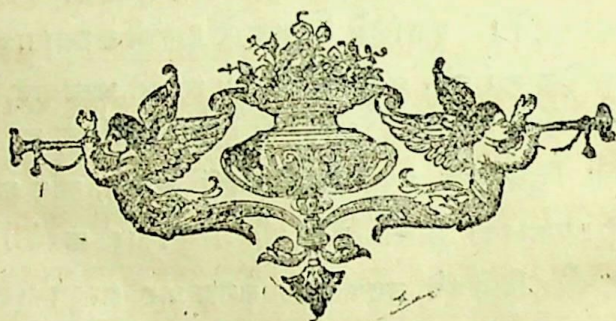
भजन लावनी ॥

चौबीस अवतारोंकी ॥

आदि पुरुष अविनाशी भक्त हितकारि धरया चोबीसों अवतार क्या न्यारे न्यारे।

सनकादिक अरु यज्ञ रूप धर प्यारे है हय ग्रीव, वराह, भगवान् दैत्य संहार।

नर नारायणका स्वरूप हरि धारे है तप किया। जाय बद्री-नाथ केदारे (उड़ावनी) कपिल देव महाराज ज्ञान अपनी माताको दीना दत्तात्रेअव धूर्त होय चौबीस गुरु कर ली......ना। ऋषभ देव अवतार आठवां राज छोड तपकी......ना (भे) राज छोड़ तप कीना जयन प्रचारे ॥ धरया ॥ प्रथु राजाने पृथ्वी रूप गौपाळे है सत व्रतको मच्छ बन प्रलय काल देखा......ले। कच्छप बन कर पहाड़ पीठ पर झाले है समुन्दर मथ कर चौदह रत्न निकाले (उ०) वैद्य धनवन्तर ले कर औषधी सिंधुमें से आ...या। मोहनि रूप धर दैत्य मोय देवनको अमृत पा......या। खंभ फाड नरसिंह देव प्रहलादका प्राण बचा...या। (भे) प्रहलादका प्राण बचाया हिरणा कुल मारे ॥ धराया ॥ २ ॥ वामन बन राजा से छल कीना। है तीन पगमें लिया सब लोक इन्द्रको दी......ना। ब्रह्माके कारण हँस रूप धर लीना। सतयुगमें हुवा है ध्रुव भक्त रंग भीना (उ०) धूजीकी भक्ति देख नारायण अपने लोक से आ...ए। गजकी पुकार सुनी हरिजुने गरुड़ छोड़ कर धा......ए। इकीस वार निक्षत्रि करके परशुराम सुख पा......ये (भे) परशुराम सुख पाये भू भार

उतारे ॥ धरया ॥ ३ ॥ वेद व्यास महाराज गुरु सुख दाई । हे चारों वेद म्हारे पुराणकोंसाख चलाई । राजा दशरथ गृह प्रगट भये चारूं भाई लिया जनक सुता श्री रामचन्द्रको व्याई (उ) वनमें जाय सुग्रीव मित्र किन बाली मारा वंका। सेतु बांध सन्या-संग ले कर तोड़ दिवी गढ़ लंका रावण मार अज्योध्या पधारे हनु-मानका डंका (भे) हनुमानका डंका अहिल्या तारे॥ धरया ॥ ४ ॥ शीश मुकट कानो विच कुंडळ सोवे । श्रीनंद नंदन तिरछी चितवन कर जोवे । बंशी बजा कर गोपिनका मन मोवे । गिरधर धर नख पर मान इन्द्रको खोवे (उ०) बुध कह तुम यज्ञ करो मत असुरन को समझाते। कळयुगमें निकळंकी होवेगा श्रीमद्भागवत गा…ते । चोवीसों औतारकी लीला भक्तनके मन भाते (भे) भक्तमाळ मन भाते श्रीकृष्ण बिहारे ॥ धरया चौवी सों अवतारके कया प्यारे प्यारे ॥ ५ ॥
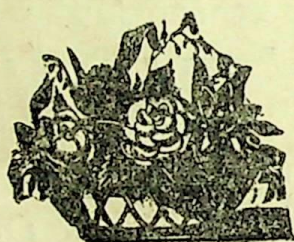
अद्भुत लावनी ।

दोहा—साजन सभा समायके प्रश्न कियो करि जोर ।
किसको भज भव निधतिरूं संशय मेटो मोर ॥

विष्णु, शिव, गणपती, शक्ति अरु भानू। है कौन बडा देवनमें जिनको मानू ॥ हरि भक्त कहे सुन साजन बात हमारी। है सबमें शिरोमणि श्रीबैकुंठ बिहारी ! संख चक्र धर भक्तनके हितकारी। जाहि नेति नेति कर गावत श्रुती सारी। जब जब भीड़ पडत है देवनमें भारे। तब तब रक्षा करत है धर धरके अवतारे। बड़े बड़े दानव या दैत्यनको मारे। ध्रुव प्रहलाद आदि ले भक्तनको तारे। महालक्ष्मीजी चरनकी चेरी जानू ॥ १ ॥ है कौन बडा देवनमें जिनको मानू ॥ अमंगल शिव हम इस कारण नहीं ध्यावें। गल रुंड माल तन चिताकी भस्म लगावें। संग भूति प्रेत गण भांग धतूरा खावें। गणपत शिव पुत्र कुरूप चित नहीं चावें। अबला सदा मलीन है जानत सकल तमाम। नर से जो नारी हुवे जपे शक्तिको नाम। भानू नित भरमण करे पलक न ले बिश्राम। कैसे अपने भक्तके सिद्ध करेंगे काम। इस लिये किसीके बचन सुनो मति कानू। है कोन बड़ा देवनमें जिनको मानू ॥ २ ॥ शिव भक्त कहे क्यों झूठ कहत है भाई। त्रिभुवनमें कोन है शङ्कर सम सुख दाई। विष्णु शिव भजके सारी सम्पदा पाई। तू बार बार क्या उनकी करत बड़ाई ॥ जलते देखे सबनको किया जहरका पान। शिव सब हीके पूज्य हैं गावत बेद पुरान। काशी पुरी निज धाम तहाँ देत मुक्तिको दान, आप सदा त्यागी रहे उत्तम अधम समान शिव पुत्र गणपती बिघन हरन पहिचानू ॥ है कौन बडा० ॥ ३ ॥

जब गजानन्दको शिवको पुत्र बताया, गणपती भक्त कर क्रोध यह बचन सुनाया। है आदि देव गँ सब से पहिले पुजाया, ढुँढी के ब्रह्म, विष्णु, शिव तप जापा। बिघन हरण मंगल करण श्रीगन-

पत महाराज, ऋद्ध सिद्ध दे भक्तको सिद्ध करे सब काज, त्रिपुरासुर से युद्ध में हारी देव महाराज, एक दन्तको पूज शिव रखी सबनको लाज। इस कारण श्रीगणपति सदा उर आनू ॥ है कौन० ॥ ४॥ भगवति भक्त कहे वृथा यह क्यों बकते हैं, बिन शक्ति क्या कोई कारज कर सकते हैं। महा माया भजके सबका काम धकते हैं, ज्यों समय समय पर सार फल पकते हैं। विष्णू उपासना कर के बन गया मोहिनी नारी, शिवजी भी धरके ध्यान हो गये अर्धंग नारी। कोटि अन्ड उत्पन्न किया जिनमें सृष्टि सारी। शिव,ब्रह्मा विष्णु आदि ले है सबकी महतारी। पुरुषारथ छांड़ो तो शक्ति गुन गानू ॥ है कौन बड़ा० ॥ ५॥ सूरजका भक्त सुन वचन सारोंके हासे, प्रत्यक्ष देव एक भानू सबकूं भासे। उत्पति पालना हेतु फिरत प्रकाशे, जब कोप करे हो परलय सर्व विनाशे। दोय रूप सरगुण निरगुण एक भानूके जान, सगुण रूपसे तम नशत निर्गुण, नशत अज्ञान शिव सनकादिक ऋषी मुनी धरत इन्हीको ध्यान भवसागर तिरना चहे तो वचन हमारो मान। स्वयं प्रकाशका धर हिरदय बिच ध्यानू है कौन बड़ा ॥ ६॥ पुराण वेद पांचोंकी महिमा गावें,भोले भाई सुन २ के भरम उजावें। है कौन बड़ा यह निश्चय होन न पावे। सत गुरुको ढूंढ़ जो इनका भेद बतावें।

शिष्य वित्तके हरणमें चातुर गुरु अनेक, संशय भ्रम छेदन करे सो लाखन बिच एक। शिष्यमें भी होने चाहिये तिव्र वैराग्य विवेक षट संपत मुमुक्ष्युता दैवी लक्षण विशेष ॥

सच्चे गुरुजन पे तन मन धन कुरवानूजी सच्चे गुरुजनपे। राम बक्श कुरवानु, है कोन बड़ा देवनमें जिनको मानू ॥

अवश्य पढ़िये

जैसा अद्भुत विषय इस पुस्तकमें समर्थन किया गया है वैसी ही दो अद्भुत बातें सर्व साधारणके सन्मुख रखनेकी मैं क्षमा मांगता हूँ और उन सवालोंको हल करनेके लिये सब से प्रार्थना करता हूँ। पहिले प्रश्नके उत्तर देने वाले अपना उत्तर जवाबी पोस्टकार्ड द्वारा दिसम्बर सन् १९१६ तक नीचे लिखे पते पर लिख भेजें। अद्भुत विचार नामक पुस्तककी एक प्रति बतौर क्षुद्र भेटके उनकी सेवामें पहुँच जायगी और दूसरी बात जो महाशय करके दिखायेंगे उनको भेट उक्त पुस्तकको पांच प्रतियां दी जावेंगी यद्यपि उनके इस अद्भुत कार्यके योग्य यह कोई उचित भेट नहीं है।

प्रश्न चौपटके खेल सम्बन्धी।

तिरी (तीन) और चौक (चार) की चोटमें कितना अन्तर है और उनका क्या २ भाव है। जैसे नीलाममें किसी भी आखरके लगानेका भाव दूणका और फर्केका भाव सौका होता है। इसी प्रकार हिसाब से तिरीका क्या दर होना चाहिये और चौक का क्या?

जलमें तैरने वालोंके लिये

जल थोड़ा हो या बहुत गहरा हो उसमें मनुष्य इस प्रकार अद्भुत रीति से तैर सकता है। अर्थात् बिना हाथ पैर हिलाये खड़े रहना और सो जाना और हर सूरत बैठ जाना पुस्तकको हाथोंमें लेकर पढ़ जाना और पास वालोंको भी सुनाते रहना। मेरे दोनों प्रश्न असम्भावी नहीं है किन्तु मैं स्वयम् सिद्ध कर सकता हूँ।

मिलनेका पता—

माहेश्वरी रामबगस दमाणी।

बीकानेर।